अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-04, 1-15 अक्टूबर, 2017

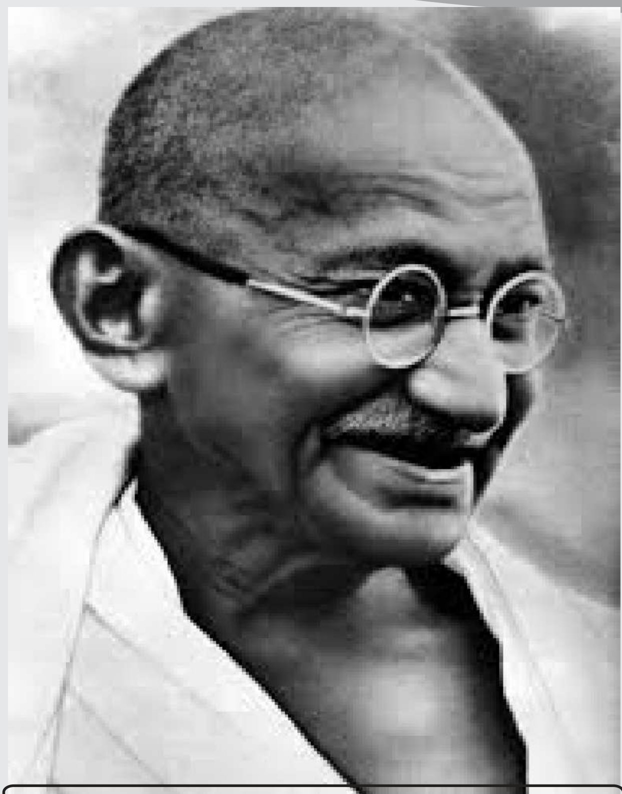

2 अक्टूबर : गांधी-जयंती : विनम्र नमन्।

‘‘भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्त-रंजित मार्ग पर नहीं है, जिस पर चलते-चलते पश्चिम अब थक गया है; उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है।...आलसी की तरह उसे लाचारी प्रकट करते हुए ऐसा नहीं कहना चाहिए कि ‘पश्चिम की इस बाढ़ से मैं बच नहीं सकता।’ अपनी और दुनिया की भलाई के लिए उस बाढ़ को रोकने योग्य शक्तिशाली तो उसे बनना ही होगा।’’

11 अक्टूबर : जेपी-जयंती : विनम्र नमन्।

‘‘स्वाधीनता मेरे लिए कई अर्थ रखती है। पर सबसे अधिक मेरे लिए यह आत्मा की स्वाधीनता का अर्थ रखती है, विचारों की स्वाधीनता का और तब कहीं जाकर कर्म की स्वाधीनता का। जहां आत्मा स्वाधीन है, चिन्तन स्वतंत्र है, वहां मनुष्य स्वतंत्रता की ऐसी परिस्थितियां पैदा कर सकता है, जिसमें वह अपने जीवन का हेतु पूरा कर सके।’’

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 04, 1-15 अक्टूबर, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. गांधी-जेपी की विरासत एवं नव-क्रांति... 2
2. अहिंसा की ताकत... 3
3. जयप्रकाश नारायण... 5
4. जेपी की विरासत का अर्थ एवं महत्त्व... 7
5. लोकनायक जिन्होंने प्राणों की आहुति... 9
6. नाट्य : मार-पराजय... 11
7. उपन्यास : 'बा'... 16
8. लोकनायक जयप्रकाश का अंतिम... 18
9. गतिविधियां एवं समाचार... 19
10. कविताएं... 20

प्रधान संपादक की कलम से...

गांधी-जेपी की विरासत एवं नव-क्रांति

आज देश फिर एक क्रांति की दहलीज पर खड़ा है। ऐसे में अहिंसक क्रांतिकारियों को जिनसे पथ-प्रदर्शन एवं दिशा मिल सकती है, वे हैं गांधी और जेपी।

आज पुनः राजसत्ता एवं पूंजी की सत्ता अधिकाधिक जन-विरोधी होती जा रही है तथा उसके इस अभियान को जन-प्रतिरोध का सामना न करना पड़े, इसके लिए वह लोगों के बीच जाति, धर्म, क्षेत्रीयता आदि के आधार पर विभाजन की खाईं को गहरी करती जा रही है।

राजसत्ता एवं पूंजी की सत्ता की एक रणनीति गांधी के समय भी थी और जेपी के समय भी। वह यह कि वे अपने को उच्च मूल्यों का व उच्च सभ्यता का वाहक बतायें तथा लोगों के बीच विभाजन को तरह-तरह से बढ़ायें।

गांधी ने साम्राज्यवादी-पूंजीवादी शक्तियों के इस चाल को हर स्तर पर बेअसर करने का काम किया। उनकी सभ्यता को शैतानी सभ्यता करार दिया, आत्मा या अंतरात्मा की शक्ति केन्द्रित सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र का अविष्कार कर क्रांति की पद्धति में क्रांति ला दी, तथा शैतानी सभ्यता से अलग एक लोक आधारित व्यवस्था के निर्माण के लिए रचनात्मक कार्यक्रम के सूत्र विकसित किये। इस प्रकार क्रांतिकारी परिवर्तन में जनता की भागीदारी सत्ता परिवर्तन के पहले और सत्ता परिवर्तन के बाद, दोनों ही काल में अपना स्वरूप विकसित करने की संभावना प्रकट करने लगी।

अंग्रेजों के शासन से मुक्ति के बाद गांधीजी को समय नहीं मिला कि वे स्वतंत्र भारत में लोकशक्ति निर्माण के लिए सत्याग्रह, रचनात्मक कार्यक्रम एवं लोक एकता के अभियान को आगे ले जाने की विधाओं को नये संदर्भों में, नये स्वरूप के साथ आगे बढ़ाते।

इस काम को बाद में सन् 1974 में जेपी ने संपूर्ण क्रांति के आंदोलन के माध्यम से आगे बढ़ाया। उस आंदोलन से घबरा कर राजसत्ता ने लोकतंत्र व नागरिक अधिकारों का गला घोंटते हुए आपातकाल की घोषणा कर दी तथा यह पूरी तरह स्थापित कर दिया कि लोकशक्ति का उभार होने पर, संसद में बहुमत प्राप्त पार्टी, तनाशाही को किस प्रकार लाद सकती है। गांधीजी की इस राय की पुष्टि हुई कि संसद लोकतंत्र की रक्षा का माध्यम रहेगी, यह जरूरी नहीं है। लोकशक्ति के उभार पर यही संसद, लोकतंत्र का गला घोंट सकती है। यही काम हिटलर ने भी किया था।

आज फिर से जल, जंगल, जमीन व खनिज जैसे प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों से जुड़े समुदायों को या तो बेदखल किया जा रहा है या गरीबी की ओर, बेरोजगारी की ओर धकेला जा रहा है। यह षड्यंत्र इसलिए किया जा रहा है, ताकि प्रकृति प्रदत्त इन जीवन आधारों को वैश्विक पूंजी एवं कारपोरेटी घरानों के हवाले किया जा सके। लोग इन नीतियों के खिलाफ एकजुट न हों इसके लिए लोगों की एकता को तोड़ने की तरह-तरह की साजिशें की जा रही हैं। जो लोग फिर भी बोलने का साहस कर रहे हैं या तो उनकी आवाज को दबा दिया जा रहा है या उनके राष्ट्रभक्ति पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया जा रहा है। इस काम के लिए मीडिया और सोशल मीडिया का जिस तरह इस्तेमाल हो रहा है वह अभूतपूर्व है। इतना ही नहीं, ये शक्तियां गांधी, सुभाष, भगत सिंह, अम्बेडकर, जेपी सभी की विरासत का प्रतिनिधित्व करने का दावा कर रही हैं तथा इनके सच्चे अनुयायियों के बीच भ्रम व विभाजन खड़ा करने का प्रयास कर रही हैं।

गांधी और जेपी के अनुयायियों के बीच भी यह कड़ी परीक्षा की घड़ी है। यदि वे एकजुट होकर नयी क्रांति के लिए सत्याग्रह, रचनात्मक कार्यक्रम एवं जन-एकता की मुहिम नहीं चलाते तो वे जन-विरोधी व लोकसत्ता विरोधी ताकतों को सफल बनाने का काम करेंगे। हमें अपने अहंकार एवं व्यक्तिगत पसंदगी-नापसंदगी से ऊपर उठकर जन-प्रतिरोध को मजबूत दिशा देनी होगी। बा-बापू-150 इसका एसिड टेस्ट होगा कि क्रांतिकारी आंदोलन का एक साझा कार्यक्रम हम बना पाते हैं या नहीं। या हमारी रुचि फासिस्ट ताकतों को मजबूत करने में है।

बिमल कुमार

गांधी जयंती : 2 अक्टूबर

अहिंसा की ताकत

❑ **महात्मा गांधी**

मैं तो खटमल भी नहीं मारता, सांप-बिच्छू को भी नहीं मारता और मांस भी नहीं खाता। लेकिन ऐसी अहिंसा कांग्रेस पर नहीं लादी जा सकती। कांग्रेस धार्मिक संस्था नहीं, राजनीतिक संस्था है। उसकी अहिंसा का दायरा मनुष्यों तक ही सीमित है। यदि अहिंसा को इससे आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाये तो कांग्रेस में हिन्दुओं के अतिरिक्त दूसरे लोग आ ही नहीं सकते। इतना ही नहीं, हिन्दुओं में से भी केवल जैन और वैष्णव ही आयेंगे और करोड़ों मांस-मछली खाने वाले हिन्दू उससे बहिष्कृत हो जायेंगे। अहिंसक को मनुष्य से आगे ले जाने में हम सीमित अहिंसा को भी खायेंगे और व्यापक अहिंसा का प्रयोजन भी पूरा नहीं होगा। अहिंसा के व्यापक होने में बहुत समय लगेगा। लेकिन साधारण जनता में यदि एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाये और कोई किसी को अपना दुश्मन न माने, तो मैं समझूंगा कि मनुष्य ने सभ्यता की दिशा में काफी प्रगति कर ली। यह बात भी याद रखने लायक है कि हम केवल जीवों के प्रति दया करके काम-क्रोधादि विकारों को नहीं जीत सकते। इन शत्रुओं को जीतने के लिए मनुष्य की मनुष्य के प्रति अहिंसा ही काम आती है। जिस व्यक्ति ने इन शत्रुओं को जीत लिया है, और जिसके हृदय में मनुष्यमात्र प्रति प्रेम ही भरा हुआ है, जो अपने अनेक प्रकार के व्यवहार में प्रेम का ही प्रयोग करता है, वह मांसाहार करते हुए भी हजार वंदनाओं का पात्र है, और जो काम-क्रोध से लिपटा हुआ, संसार को धोखा देते हुए अपना समय बिताता है, लेकिन रोज चींटियों को चुगता है और खटमल को भी नहीं मारता, उसकी भूतदया का मूल्य नहीं के बराबर है, क्योंकि उसकी भूतदया आत्म-ज्ञान से उद्‌भूत नहीं होती।

दंगों को शांतिपूर्वक शांत करने के लिए तो मन में सच्ची शांति चाहिए, गुंडे के प्रति भी प्रेम होना चाहिए। ऐसी वृत्ति एकाएक नहीं आ जाती, अभ्यास से ही आती है। जब दंगे न हो रहे हों तब इस वृत्ति का अभ्यास करना चाहिए। मतलब यह कि जहां हम खुद रहते हों, वहां के गुंडे माने जाने वाले लोगों से हम परिचय करें। शांति का अभ्यास करने वाला अपने आसपास के समाज के किसी भी अंग को छोड़ेगा नहीं। वह सबके साथ मीठे संबंध जोड़ेगा, सबकी सेवा करेगा, गुंडे कोई आकाश से नहीं उतरते, भूतों के समान पृथ्वी के पेट से नहीं निकलते। उनकी उत्पत्ति दुर्व्यवस्था से होती है, इसलिए समाज उनके लिए जिम्मेदार है।

अराजकता और अंधाधुंध खतरे के लिए भी हमें तैयार रहना चाहिए। हमें विश्वास तो यह रखना चाहिए कि अहिंसा का परिणाम हिंसा नहीं होगा, और यदि होगा भी तो उसको काबू में लाने की हममें ताकत होगी। और वही हमारी कसौटी भी होगी। अहिंसा चीज ही ऐसी है कि जैसे-जैसे हिंसा का वातावरण बढ़ता है वैसे-वैसे उसकी ताकत भी बढ़ती जायेगी। मुझे आशा है कि वह शक्ति मेरी मृत्यु के पहले आपको मिलेगी। हम अहिंसक स्वराज्य तभी स्थापित कर सकेंगे जब हममें वह अहिंसा-बल आयेगा और उस बल के द्वारा हम दुनिया में अमन और शांति कायम कर सकेंगे।

एक पैगाम सब मुसलमान भाइयों को देना चाहता हूं। यदि आठ करोड़ मुस्लिम हिन्द की आजादी के खिलाफ होंगे तो हिन्द को कभी आजादी मिलेगी ही नहीं। लेकिन वे लोग आजादी के खिलाफ हैं, यह मैं तब ही मानूंगा जब कि आठ कोटि में से सब बालिग प्रतिनिधि उसके सामने अपना विरोध जाहिर करें। मैं उसे नामुमकिन-सया समझता हूं। हां, वे लोग यह ऐलान कर सकते हैं कि हिन्दुओं से छुटकारा पाकर ही हमें आजादी चाहिए। हिन्दुस्तान-जैसा गरीब मुल्क, जिसके कोने-कोने में हिन्दू-मुसलमान साथ-साथ रहते हैं, उसके दो भाग करना अराजकता से भी बढ़कर बुरी बात है। इसका अर्थ मानों जिन्दा शरीर को चीरकर टुकड़े करना है। यह 'सफेद खून' कोई बरदाश्त नहीं कर सकेगा। यह मैं एक हिन्दू की हैसियत से नहीं कहता। मैं तो हिन्दू, मुसलमान, पारसी सबके प्रतिनिधि के तौर पर यह कह रहा हूं। मैं तो मुसलमान भाइयों से कहूंगा कि सबसे पहले मेरे टुकड़े करो और बाद में हिन्दुस्तान के करना। आप वह करना चाहते हैं जो मुसलमानों ने अपने दो सौ साल तक के राज में भी करना नहीं चाहा था। हम आपको यह नहीं करने देंगे। जो बात मुसलमानों के बारे में कही, वही सिखों को भी लागू होती है। यदि तीस लाख सिख हिन्द की आजादी के रास्ते में रोड़े अटकाना चाहें

तो जरूर वे भी कर सकते हैं। तब उनके साथ भी हम अहिंसा से ही काम लेंगे। अहिंसक स्वराज्य के बिना अहिंसा नहीं मिल सकेगी। मैं तो कौमी एकता की कोशिश करूंगा। इस्लाम का अर्थ ही शांति है। वह शांति सिर्फ मुसलमानों की ही शांति नहीं है, बल्कि सब कौमों और सारे जगत् की शांति उसके अंदर आ सकती है।

किसी भी विधान को अन्वय और व्यतिरेक, दोनों की कसौटियों पर कसे बिना अबाध नहीं कहा जा सकता। हम जानते हैं कि पानी में हाइड्रोजन के दो भाग और ऑक्सीजन का एक भाग है, किन्तु हमें इसकी जांच पृथक्करण और एकीकरण, दोनों रीतियों से करनी चाहिए। पानी का पृथक्करण करने पर हम देखेंगे कि उसमें दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन है। उनका एकीकरण करके भी देख लेना चाहिए और उनके मेल से पानी उत्पन्न हो जाये तभी अपने निष्कर्ष को सिद्ध हुआ मानना चाहिए। व्यवहार में भी यही नियम है। कोई चीज बाहर से प्रकाश की भांति स्पष्ट दीखती हो, किन्तु उसे असत्य ठहराने वाले कितने ही तथ्य हो सकते हैं, और जब तक हमने उनकी जांच नहीं कर ली है, तब तक हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते। उसमें सत्य का भंग तो होता ही है, उस विषय में अनुदार राय बनाने में अहिंसा का भी भंग होता है। हम अहिंसा के मार्ग के यात्री हैं, इसलिए हमें तो खास कर अपना हर कदम बहुत सावधानी से उठाना होगा।

एक साथी कैसी परिस्थितियों में बड़ा हुआ है, उसने कैसी-कैसी कठिनाइयां झेली हैं, और इन कठिनाइयों को पार करके आज वह किस कक्षा में पहुंचा है—क्या हमने यह सब देखा है? हमने तो उसका ऊपर से दिखने वाला एक दोष ही देखा है। प्रेम के लिए अंग्रेजी में 'चैरिटी' बहुत ही सुंदर शब्द है। इस शब्द में दया का अर्थ भी आ जाता है। हमारी अहिंसा में भी दया पूरी-पूरी होनी चाहिए।

हमें जब भी दूसरे के स्वभाव की कमियां दिखायी दें, तब हमेशा उन कमियों को नगण्य मानकर, हमें अपना ध्यान उसकी खूबियों पर ही केन्द्रित करना चाहिए। दूसरों के गुण परमाणु-जैसे हों तो भी उन्हें पर्वत-जैसा बताने में ही दया और प्रेम की कला है। इसके सिवा अपनी मूक सेवा द्वारा हृदय जीतने का मार्ग तो है ही।

अपने जन्म और अपने पालन-पोषण की परिस्थितियों से प्राप्त संस्कारों को मनुष्य कहां तक जीते? यह चीज हमें याद रहे तभी हम दूसरों के प्रति अन्याय करने से हिचकेंगे। राजाओं और महाराजाओं के दोष मुझसे ज्यादा कौन जानता होगा? किन्तु इन लोगों के लिए मेरे मन में सहानुभूति क्यों है? उसका कारण यह है कि मैं जानता हूं कि उनका स्वभाव, उनका मिजाज उनकी परिस्थितियों का परिणाम है। इसीलिए मैं उन्हें समझ पाता हूं और वे भी जानते हैं कि मैं उनका मित्र हूं।

रही तिरस्कार की बात तो उसके विषय में हमें एण्ड्र्यूज के लिए कितने ही सरकारी अधिकारियों के मन में निरा तिरस्कार का भाव था और एण्ड्र्यूज इस बात को जानते थे। फिर भी वे उन लोगों के पास जाने में संकोच नहीं करते थे। वे यह देखने की कोशिश करते थे कि तिरस्कार का भाव उनके मन में क्यों है, और उसे दूर करने का प्रयत्न करते थे। ऐसा तिरस्कार तो प्रेम के लिए अवसर उपस्थित करता है। जो हमारे प्रति प्रेम रखता है उसके प्रति प्रेम रखने में क्या विशेषता है? विशेषता तो तब है जब कोई हमारा तिरस्कार करे और हम उसके प्रति प्रेम और दया से द्रवित हों। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मैं भाग चलूं—लेकिन एकांत से प्राप्त होने वाली शांति की तलाश में नहीं, बल्कि संपूर्ण अकेलेपन की शांति में! अपने को पहचानने के लिए, अपनी वास्तविकता परिस्थिति को जानने के लिए और उस 'शांत-मंद स्वर' को अधिक अच्छी तरह सुनने के लिए! तभी मेरा अहिंसा का प्रयोग पूर्ण होगा।

ऐसे कुछ लोग तो हो ही सकते हैं जो अपने विचार-मात्र से जगत को प्रभावित करने की शक्ति रखते हों। इसलिए गुफा में जाकर रहना हो तो उसमें भी उद्देश्य एकांत में अपने कल्याण के साधन का नहीं, बल्कि विचार की ऐसी सहज सिद्धि का होना चाहिए कि हमारे मन में प्रतिक्षण जगत के कल्याण का ही विचार चलता रहे।

किन्तु संपूर्ण वैराग्य का आकर्षण मुझे कभी नहीं रहा।

केवल ईश्वर ही अंतिम निर्णायक है। ऐसा हो सकता है कि हम जिसे अहिंसा का कार्य समझते हों वह ईश्वर की निगाह में हिंसा का हो। लेकिन हमारे लिए रास्ता निर्धारित है। और फिर आपको मालूम होना चाहिए कि अहिंसा के सच्चे आचरण का अर्थ यह भी है कि उसका आचरण करने वाले मनुष्य की बुद्धि अत्यंत तीव्र और अंतरात्मा खूब जागरूक होनी चाहिए। ऐसे मनुष्य के लिए गलती करना कठिन है। जब मैंने पोलैंड के लिए उन शब्दों का प्रयोग किया और जब मैंने अपने-आपको लाचार मानने वाली लड़कियों को यह सुझाव दिया कि वह हिंसा की दोषी बने बगैर अपने नाखूनों और दांतों का प्रयोग कर सकती है तब आपका ध्यान इस बात पर होना चाहिए कि मेरे मन में उक्त कथन का क्या अर्थ है। ये दोनों आक्रमणकारी की जबरदस्त ताकत के आगे, यह जानते हुए भी झुकने से इनकार करते हैं कि इसका परिणाम अनिवार्य मृत्यु के सिवा और कुछ नहीं है। पोल लोगों को मालूम था कि वे धूल में मिला दिये जायेंगे। फिर भी उन्होंने जर्मन सेनाओं का मुकाबला किया। इसलिए मैंने इसे लगभग अहिंसा कहा। ❑

स्मरणांजलि

जयप्रकाश नारायण

❑ विनोबा

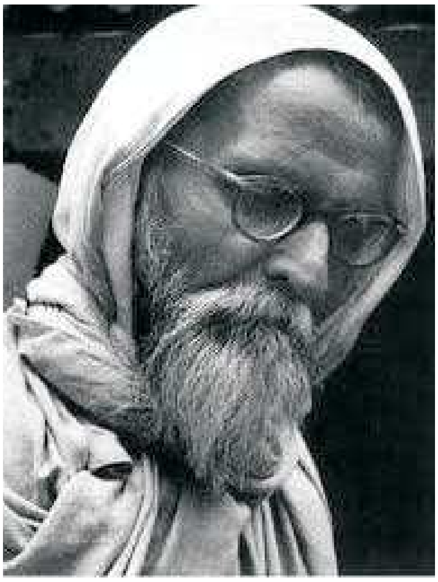

''पैसा हमारे सामाजिक जीवन को दूषित करता है, इसलिए व्यावहारिक जीवन को शुद्ध बनाने के लिए पैसे का उच्छेद करना जरूरी है''—इस विचार से पवनार आश्रम में मेरा कांचन-मुक्ति का प्रयोग शुरू हुआ था। प्रार्थना में गीताई का पाठ रहँट चलाते-चलाते होता था। एक बार जयप्रकाशजी मुझसे मिलने आये। वे मुझसे मिलने आये। वे भी हमारे साथ रहँट चलाने में शरीक हो गये। उन दिनों हममें विचार-भेद होते हुए भी हमने एक साथ रहँट चलाया। वे बहुत प्रेरणा लेकर गये। (जेपी ने कहा था, ''मैंने वहां प्रकाश की किरण देखी।'' बाबा से उनकी यह प्रथम मुलाकात थी।) यह ऐसा दृश्य था, जो मैं कभी भूल नहीं सकता।

जयप्रकाशजी विद्या प्राप्ति के लिए अमेरिका गये। यहां से पैसा लेकर नहीं गये थे। वहां उन्होंने मजदूरी की—होटल आदि में काम किया, पैसा कमाया और अध्ययन किया। बिलकुल मामूली मजदूरी की। इस प्रकार उनके जीवन में पुरुषार्थ की प्रेरणा है। जो कष्ट करके विद्या प्राप्त करता है, वह जीवन में कभी हारता नहीं।

जयप्रकाशजी ने कम्युनिज्म का साहित्य बहुत पढ़ा था, उसे पचाया था। लेकिन उनको भी लगा कि ईश्वर के बिना 'गुडनेस' (भलाई) के लिए 'इन्सेन्टिव' (प्रेरणा) नहीं होती। दुनिया में परिशुद्ध चेतन व्याप्त है, यही परमात्मा है। उस व्यापक परिशुद्ध चेतन से इस पिंड के चेतन का संबंध आने से, यह चेतन शुद्ध होता है।

जयप्रकाशजी की दो-तीन विशेषताएं थीं। पहले चर्चा चलती थी कि जवाहरलालजी के बाद प्रधानमंत्री कौन बनेगा? तब जयप्रकाशजी का नाम लिया जाता था। लेकिन जयप्रकाशजी ने कभी भी सत्ता हाथ में नहीं ली, सत्ता की अभिलाषा उनको नहीं थी। लोगों ने उनको 'लोकनायक' उपाधि दी। लेकिन उन्होंने अपने को कभी लोकनायक माना नहीं, लोकसेवक ही माना। अगर वे चाहते तो प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बन सकते थे। लेकिन ऐसी कोई चाह उनके मन में कभी हुई नहीं। और लोगों के स्तर पर रहकर ही वे लोगों की सेवा करते रहे। गांव-गांव के लोगों की—खासकर गरीबों की शक्ति बढ़े, यही एकमात्र कामना उनकी थीं उसी के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। आखिर तक दरिद्रनारायण की सेवा करते-करते उन्होंने अपना जीवन सार्थक बनाया।

दूसरी विशेषता। वे गृहस्थाश्रमी होने पर भी पति-पत्नी ब्रह्मचर्य से रहते थे। रामकृष्ण परमहंस ब्रह्मचारी थे। उनकी शादी करायी गयी, तो उनकी पत्नी शारदादेवी ब्रह्मचारिणी रहीं। इससे उलटा किस्सा जयप्रकाशजी का है। प्रभावती बापू की सेवा में रही थीं, बापू से उनका निकट संबंध था। बापू के विचारों के कारण प्रभावती को ब्रह्मचर्य की प्रेरणा मिली थी और निश्चय हुआ। जयप्रकाशजी अनअशूमिंग—सहज निरहंकार थे कि यह बात किसी को मालूम भी नहीं। गांधीजी ने कस्तूरबा को 'माता' माना था, यह बात सबको मालूम है। रामकृष्ण की बात जाहिर है। लेकिन जयप्रकाशजी की बात किसी को मालूम नहीं। दुनिया में ऐसी मिसालें कम होती हैं।

जयप्रकाशजी की *तीसरी विशेषता* थी, उनकी नम्रता, सरलता और स्नेह। उनके अनेक गुणों का प्रभाव मुझ पर पड़ा है। उसमें मुझे उनके हृदय की सरलता बहुत प्रिय है।

गांधी-निधि ने गांधीजी के शताब्दी-महोत्सव का कार्यक्रम निर्धारित किया था। उसमें अध्ययन मंडल, लायब्रेरी और खादी वगैरह बातें भी थीं। जेपी उसके सदस्य थे। मैंने उनका एक लेख पढ़ा। उन्होंने लिखा था कि ''बहुत-से कार्यक्रम हैं, पर क्रांतिकारी कार्यक्रम कोई नहीं है। इसलिए इस प्रसंग से गांधी-निधि पांच वर्षों तक ग्रामदान और खादी काम उठा ले।'' तब मुझे याद आयी सिंहनी की कहानी। सियार का बच्चा बूढ़ी सिंहनी के पास शूरता की बातें बघारने लगा। सब कुछ सुनने के बाद सिंहनी ने कहा, ''निःसंदेह तू शूर है, पर खेद की बात यही है कि जिस कुल में तू पैदा हुआ है, वहां हाथी का शिकार नहीं किया जाता।'' बहुत-से काम सियार के इस बच्चे के काम जैसा हुआ करते हैं, वे पराक्रम के काम नहीं होते। अन्य अवसरों पर फुटकर काम चल सकते हैं। लेकिन जब गांधीजी के नाम पर कोई काम करना है, तो उसकी कसौटी होगी 'क्रांति'।

जयप्रकाशजी का शरीर थका हुआ था। लोगों के आग्रह के कारण थोड़े आराम के लिए वे जरा हिमालय की गोद में गये थे। इतने में इधर बिहार में हमारे साथियों को नक्सलवादियों द्वारा कत्ल की धमकी दी गयी। उसकी खबर जयप्रकाश बाबू को मिली, तो वे फौरन् दौड़े आये और उन्होंने वहां अपनी जान की बाजी लगा दी। नक्सलवादियों का काम शुरू हो गया था। मालिकों की कत्ल शुरू कर दी गयी थी।

कभी जयप्रकाशजी की भी कत्ल हो जाती तो आश्चर्य की बात नहीं थी। जेपी वहां गये तो कोई कहते अब क्रांति की दिशा में नया कदम मिलेगा, कोई कहते ग्रामदान की नयी टेकनिक मिलेगी। कोई कहते कि सत्याग्रह का पहलू खुल जायेगा। लेकिन इन सबकी कीमत कम है। वह जो स्नेह था, जिसके कारण वे दौड़े आये, उसी की कीमत ज्यादा है।

जेपी अपना आराम का कार्यक्रम रद्द कर मुसहरी प्रखंड में गांव-गांव में घूम रहे थे और मैं अपना 'माइंड' (दिमाग) बंद रखूं, यह हो नहीं सकता था। मैंने अपना दिमाग खुला रखा। मैंने कहा, ''जयप्रकाशजी ने जान की बाजी लगायी है, इसलिए बाबा भारत के मध्य में आकर बैठा है। बाबा कचरा उठाता है, तो वह भी एक जप हो जाता है। यह सफाई का काम यानी बाबा का मुसहरी प्रखंड है। जयप्रकाशजी उधर काम में लगे हैं और बाबा यहां।'' उनकी तरफ मेरा अभियान सतत रहा। उन दो-तीन महीनों में स्नेह की मिसाल मेरे सामने रही थी जयप्रकाश बाबू की। मेरी आदत है अक्सर जल्दी सो जाने की और मध्य रात्रि में जाग जाता हूं तो घंटे-दो घंटे हमारे साथियों का स्मरण करता रहता हूं। उन दिनों कई दफा जयप्रकाशजी की मिसाल याद करके मेरी आंखों में से आंसू बहे।

जयप्रकाशजी के काम का (विचार भिन्नता होने पर भी) विरोध मैं नहीं करता था। इसका कारण बताते हुए मैं कहता, ''नंबर एक, वे सज्जन हैं। नंबर दो, वे निःस्वार्थ हैं। नंबर तीन, अगर वे जहां गलत समझेंगे, तो गलती को कबूल करेंगे और बात वापस ले लेंगे।''

जयप्रकाश बाबू ने आखिरी निवेदन दिया था। उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा था कि विनोबाजी ने हमारे सामने जो आदर्श रखा है, वह अत्यन्त सोचने लायक है। उसमें हमारी ताकत लगनी चाहिए। केवल राजनैतिक कार्य से काम बनेगा नहीं, हमको आध्यात्मिक दृष्टि से कार्य करना होगा।

बिहार में बाबा और जेपी जब एक ही सभा में बोलते थे, बाबा का व्याख्यान आधा घंटा होता था और जेपी का दो घंटा। दोनों मिलकर श्रोताओं का समाधान हो जाता था। सर्वोदय वालों में यह कहावत रूढ़ हुई थी कि बाबा का कोई भी व्याख्यान आधे घंटे से ज्यादा होता नहीं और जयप्रकाशजी का कोई भी व्याख्यान दो-ढाई घंटे से कम होता नहीं।

पंडित नेहरू की गंगा पर इतनी प्रीति थी कि उन्होंने कहा कि ''मेरी थोड़ी-सी रक्षा गंगा में डालें।'' जयप्रकाशजी ने भी कहा, ''जल्द-से-जल्द मुझे गंगा के किनारे ले चलो। बंबई से बाहर निकालो।'' वे तो 'भोलानाथ' थे ही।

यहां (ब्रह्मविद्या मंदिर में) प्रज्ञापथ पर जयप्रकाश और प्रभावती के नाम के आम्रवृक्ष हैं। उनके पास तुलसी का पेड़ लगाया है। मैं रोज कहता हूं—जयप्रभा ऐकिती, तुलसी रामायण गाती (जय-प्रभा सुनते हैं, तुलसीदास रामायण गाते हैं।)

जयप्रकाशजी के देह की मृत्यु हुई। वे हमेशा सूर्योदय से घंटा-डेढ़ घंटा पहले उठते थे। आध्यात्मिक शब्द, सूत्र, मंत्र गुनगुनाते रहते थे, या उनको सुनाया जाता था। उस दिन भी ऐसा किया और फिर सो गये। सुबह पौने छह बजे वे चले गये। प्रार्थना के बाद जो निद्रा में ही चले जाते हैं, वे भगवान का चिन्तन करते-करते जाते हैं।

मैंने जयप्रकाशजी को 'जपुजी' नाम दिया था। उन्हें जेपी कहते थे। हिन्दी में उसका ज. प. होता है। उसको 'उ' लगाया प्रेम के लिए और 'जी' लगाया आदर के लिए, तो बना जपुजी। जपुजी गुरुनानक का प्रख्यात ग्रंथ है। गुरु नानक का एक भजन उनकी स्मृति में उत्तम है—*बिसर गई सब तात पराई, जब ते साधु-संगत मोहिं पाई। ना कौ बैरी नाहि बिगाना, सकल संगि हमकौ बनि आई...।* ❑

कौन कहता है कि

❑ रामजन्म सिंह 'शिरीष'

कौन कहता है कि गांधी मर गया?
मरण में अमरत्व-सौरभ भर गया।

नाम है गांधी अहिंसा-तत्त्व का,
नाम है गांधी अमर कर्तृत्व का,
जी उठे जिससे मनुजता विश्व की–
नाम है गांधी उसी पुरुषत्व का,
दासता से मुक्त कर मन-प्राण को–
भावना बंधुत्व की वह भर गया।

नाम है गांधी दया का, प्रेम का,
सत्य की आराधना का, क्षेम का,
नाम है गांधी क्षमा का, स्नेह का,
व्यक्ति के हर त्याग-तप का, नेम का,
पान कर पीयूष गीता का अमर–
साधना के सिन्धु सौ-सौ तिर गया।

विश्व के कल्याण की ले कामना,
शांति-हित करता रहा नित वंदना,
स्नेह से निर्माण कर शिव-सत्य पथ का–
एकता में भर गया शिव-चेतना,
छंट गये घन स्वार्थ के, अज्ञान के–
तिमिर में नव-ज्योति जगमग कर गया।

भारती को सहज-शाश्वत कर गया,
शत्रु को अपनत्व से वह भर गया,
था मसीहा कृषक का, मजदूर का–
राष्ट्रभाषा को प्रचारित कर गया,
दीन-हीन-अशक्त जन की हार को–
विजय में सोल्लास परिणत कर गया।

रुक गयी झंझा, रुके तूफान भी,
चेतना जागी, जगे पाषाण भी,
निर्झरों ने मुग्ध दुहरायी ऋचा–
झोपड़ी उट्ठी, झुके प्रासाद भी,
प्राण में, मन में अडिग पुरुषत्व का–
साहसिक विश्वास जागृत कर गया।

कौन कहता है कि गांधी मर गया,
मरण में अमरत्व-सौरभ भर गया। ❑

11 अक्टूबर : जेपी जयंती : नमन्

जे पी की विरासत का अर्थ और महत्त्व

❑ डॉ. रामजी सिंह

भारत के समाजवादी आंदोलन के इतिहास में सबसे प्रखर, बहुआयामी चिन्तक और अविरल योद्धा डॉ. राम मनोहर लोहिया ने गांधी की विरासत के विभाजन में गांधीवादियों को सरकारी गांधीवादी, मठाधीश गांधीवादी और कुजात गांधीवादी—इन तीन श्रेणियों में रखा है। विनम्रता है कि अपने को उन्होंने अंतिम श्रेणी यानी कुजात गांधीवादी की श्रेणी में रखा है। लेकिन मुझे लगता है कि कुछ और भी ऐसे महापुरुष हैं जिनके लिए तीनों से अलग श्रेणी बनानी होगी। इसी श्रेणी में हम लोकनायक जयप्रकाश को रख सकते हैं, जिनके ऊपर के तीनों लेबल अपर्याप्त होते हैं। जयप्रकाश जी ने भले ही कोई सरकारी या शासन के पद को स्वीकार नहीं किया लेकिन कांग्रेस के अंदर और बाहर जिस समाजवादी दल को जन्म दिया उसका पूर्ण पोषण और संगठन भी किया था। यही कारण है कि उन्हें भारत ही नहीं बल्कि विश्व की राजनीति का सूक्ष्मतम ज्ञान था। असल में गांधी की तरह जयप्रकाशजी राजनीति को अस्पृश्य नहीं मानते थे। वो भले ही सत्ता की दहलीज में रहने के बजाये जनता-जनार्दन के बीच रहना गांधी और जेपी का स्वधर्म था। ये दोनों सतत विकासशील प्रतिभा के व्यक्ति थे जो किसी दल या संगठन की सीमाओं में बांधे नहीं जा सकते हैं। *''जिसने बांधा वेग पवन का, जिसने बांधा पानी। आसमान की नीली चादर सबके ऊपर तानी।।''* गांधी या जयप्रकाश को किसी कोटि में बांधा नहीं जा सकता है।

युवा काल से लेकर अंतिम समय तक जयप्रकाश, गांधीजी की तरह एक आत्म-साधना के साथ समाज-साधना में आजीवन समर्पित दीखते हैं। गांधी की तरह जेपी ने गृहस्थ जीवन को अपनाया लेकिन आश्रम की मर्यादा और माताश्री प्रभावती की भावना और निष्ठा के कारण युवा जयप्रकाश ने आजन्म विवाहित ब्रह्मचर्य की साधना की। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी विश्वविद्यालय की पढ़ाई का त्याग कर स्वतंत्रता आंदोलन के सबसे संकटपूर्ण और विरोचित्य योद्धा के रूप में उसमें भाग लिया। इसलिए गांधी के बाद 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के महानायक के रूप में जयप्रकाश को स्मरण किया जाता है।

'जयप्रकाश उसको कहते हैं,
जो नहीं मरण से डरता है।
ज्वाला को बुझते देख,
स्वयं जो अग्निकुंड में गिरता है।
है जयप्रकाश वह नाम जिसे,
इतिहास समादर देता है।
बढ़कर उसके पद-चिह्नों को,
ऊपर अंकित कर लेता है।

भारत के बाहर भी जयप्रकाश लोक स्वातंत्र्य और समाजवाद के प्रमुख नायक माने जाते थे। चाहे वह वर्मा के आंग्यसेंग हों या पाकिस्तान के राष्ट्रपति आयूब खां या नेपाली कांग्रेस के नेतागण, युगोज्लाविया के मार्सल टिटो या देशों के समाजवादी नेताओं से उनका व्यक्तिगत परिचय तो था ही, नेपाली कांग्रेस के सभी संघर्षशील नेताओं से बिल्कुल व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंध थे। इसीलिए नेपाल की जनक्रांति में जेपी का अनन्य सहयोग रहा और जब बंगलादेश की जनता जाग उठी तो उसके लिए विश्वभर में जनमत अनुकूल करने के लिए उन्होंने व्यक्तिगत रूप से ही अभियान किया था। उसी प्रकार चेकोस्लोवाल्या, हंगरी, तिब्बत आदि ने आक्रमण किया तब गांधीजी ने इसका विरोध करते हुए सभी जापानियों के नाम एक खुली अपील की थी। इसी बापू की धारा को पकड़कर जेपी ने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किये जा रहे अन्याय का विरोध किया। अपने पड़ोसी पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति आयुब खां से भी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच अच्छे संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। भारत के अंदर किसानों और मजदूरों के खिलाफ शोषण और उत्पीड़न के लिए अनेक मुहिम चलाये। बिहार, उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन के अग्रणीय नेता थे और समाजवादी संस्थाओं का मुख्य नेतृत्व जयप्रकाशजी के हाथों में था। उसी तरह अखिल भारतीय रेलवे कर्मी महासंघ, अ. भा. डाकतार महासंघ, अ. भा. महासंघ और न जाने कितने संगठनों के सूत्रधार के रूप में लोकनायक थे। उसी प्रकार एक स्वतंत्र और अहिंसा युवा शक्ति के व्यापक संगठन में उनकी गहरी भूमिका थी और 1974 के विद्यार्थी और युवा संगठनों के वे तो अभिभावक ही थे। विनोबा जी के भूदान आंदोलन में उन्होंने राजनीति से अलग होकर अपना जीवनदान तक दिया और हजारों युवकों, कार्यकर्ताओं और नेताओं को भी इस भूदान आंदोलन से जोड़कर उन्हें शक्तिमान बनाया। उन्होंने गांधी के मूल मंत्र सत्य और अहिंसा को जीवन में संगठित रूप देने के लिए अखिल भारतीय शांति सेना मंडल और बिहार तरुण शांति सेना और छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी जैसी रचनात्मक संस्थाओं के अभिभावक और प्रेरक बने। 1960 में बिहार के असाधारण दुरभिक्ष में लोगों की मानवीय करुणा जाग्रत कर राहत कार्य का जितना व्यापक संगठन बनाया वह असाधारण था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जेपी

भले ही गांधी नहीं थे लेकिन गांधी के विचारों को तेजस्विता प्रदान की और नये आयाम भी जोड़े। सचमुच में वैश्विक स्तर पर गांधी के प्रवक्ता बन गये थे। इसीलिए अपने जीवन में उन्होंने समाज साधना को गांधी के जीवन साधना से जोड़ने का एक शाश्वत प्रयोग किया, जिसके गर्भ से गांधी विद्या संस्थान की स्थापना हुई। एक समाज वैज्ञानिक होने के नाते जेपी ने समाज साधना को विज्ञान की कसौटी पर ढालना चाहा था ताकि गांधी-विचार एक स्वप्नदर्शी सिद्धांत के रूप में नहीं बन जाये। गांधीजी ने भी अपने विचारों को समग्रता में व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रयोग करने का प्रयत्न किया था। उसी छोर को पकड़कर जेपी ने भी गांधी विचार को समाज विज्ञान की प्रयोगशाला में कसने के लिए गांधी विद्या संस्थान की स्थापना की थी। एक निष्पक्ष, निर्लिप्त और पूर्ण रूप से अनाग्रही बनकर वे लोगों को बतलाना चाहते थे कि वे गांधी विचार कोड़ा सिद्धांतवाद या यूटोपिया नहीं है। वह तो समाज साधना का दिशादर्शक है। गांधी विचार आज इसलिए श्रीहीन और शक्तिहीन नहीं है क्योंकि उसके सिद्धांत गलत है। बल्कि हम उसका अनुगमन नहीं करते है। जो सिद्धांत सामाजिक साधना के लिए उपयोगी नहीं है वह केवल बौद्धिक व्यायाम है। इसीलिए जेपी ने गांधी विद्या संस्थान की स्थापना की थी कि गांधीजी के विचार और सिद्धांतों की समाज विज्ञान की प्रयोगशाला में कसौटी पर रखकर उससे प्राप्त निष्कर्षों के आलोक में समाज साधना की जाये। इसमें उन्होंने गांधी के मूलभूत सिद्धांत सत्य और अहिंसा का न केवल अपने जीवन में बल्कि अपने संगठनों और अभियानों में प्रयोग किया। किसी भी सिद्धांत की कसौटी व्यवहार में होनी चाहिए या दूसरे शब्दों में समाज की साधना में होनी चाहिए। व्यक्तिगत कोई सत्यवादी हरिश्चन्द्र हो सकता है या व्यक्ति कोई सुकरात, ईशामसीह या मंशुर आदि हो सकते हैं लेकिन सत्य और अहिंसा, समाज साधना और जीवन व्यवहार का विषय कैसे हो यही गांधी, जेपी विचार का यक्ष प्रश्न है। गांधी ने अपने जीवन में इन आदर्शों का व्यापक प्रयोग किया। लेकिन उसे हमने समग्रता में न देखा और न उसका प्रयोग किया। जयप्रकाशजी ने गांधीजी के आदर्शों और उनके एकादश व्रतों को किस प्रकार उनके रचनात्मक कार्यक्रमों को पूर्ण करने के लिए प्रयोग किया और उसमें कितनी सफलता या असफलता मिली, यह देखकर उन्होंने गांधी विचार को केवल व्यक्तिगत साधना का विषय नहीं रखकर उसे समाज साधना और समाज विज्ञान के साथ जोड़ दिया। कोई भी परिवर्तन के पीछे हृदय परिवर्तन, विचार परिवर्तन और परिस्थिति परिवर्तन ये तीनों आवश्यक है। इसके लिए हमें रचनात्मक कार्यक्रमों के साथ सत्याग्रह के उपकरण को स्वीकार करना होगा। समाज विज्ञान की साधना ही ऐसी कसौटी है जिससे हम सिद्धांतों को जांच सकते हैं। गांधीजी के बाद हमने एकांगी दृष्टि से प्रयोग करना ही गांधी विचार की साधना मान ली। इसीलिए या तो हम राजनीति गांधीवाद या औपचारिक या कर्मकाण्डीय गांधीवाद मान लिया या किसी आश्रम में बैठकर व्यक्तिगत साधना और छोटे-मोटे समाज निर्माण को काम करके आत्मसंतुष्टि पायी। अध्यात्म से समाज साधना को जोड़ना ही जेपी का जीवन दर्शन था।

वास्तव में अध्यात्म की सच्ची साधना समाज से कटकर नहीं हो सकती है। प्रह्लाद की अपूर्व साधना के कारण जब भगवान मुक्ति का उपहार लेकर आये तो प्रह्लाद ने बड़े ही विनीत भाव से निवेदन किया कि हमारे साथी और सुहृदय को भी मुक्ति का लाभ दीजिए तो भगवान ने यह कहकर इनकार कर दिया कि उन लोगों की मुक्ति साधना पूर्ण नहीं हुई है। इसपर प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा :

'प्रायेण मुनिः स विमुक्त कामाः
नयनम् क्षरन्ति विजेनेन प्रार्थ एकः।'

यानी है भगवान जब मेरे साथियों को मुक्ति नहीं मिल सकती है तो मुझे वह अकेले उस मुक्ति को भी प्राप्त करना स्वार्थ बुद्धि मानता हूं। जयप्रकाशजी ने अपने को शून्य में विलीन कर अपनी सारी महत्त्वाकांक्षाओं को मिटाकर अत्यंत विनम्र भाव से समाज साधना का प्रयास किया। उन्होंने 21 दिनों का उपवास आत्मशोधन के लिए करने के पश्चात उन्हें अच्छाई की राजनीति चाहिए, जिसे गांधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण कहा था। जयप्रकाशजी ने अपनी साधना से एक और सिद्धांत पर अपनी आस्था प्रकट की थी, जिसे हम सांस्कृतिक क्रांति का केन्द्रीय विचार मान सकते हैं कि 'भौतिकवाद से साधुता को प्रश्रय नहीं मिल सकती है। इन सब सिद्धांतों को समाज विज्ञान की कसौटी पर कसकर देखने के लिए जिस प्रयोगशाला की आवश्यकता है, उसी को गांधी विद्या संस्थान कहते हैं। यह संस्था उस महान पुरुष की विरासत है, जिसने गांधी और विनोबा जैसे महान पुरुषों की साधना को समाज विज्ञान की कसौटी पर कसने के लिए गांधी विद्या संस्थान के रूप में एक प्रयोगशाला का निर्माण किया था। यही गांधी और जयप्रकाश की अमूल विरासत है। ❑

'सर्वोदय जगत'
के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों से अनुरोध है कि अपने महत्त्वपूर्ण आलेख, रचनाएं, विचार एवं सुझाव पत्रिका के लिए भेजें। –सं.

जेपी पुण्यतिथि : 8 अक्टूबर

लोकनायक जिन्होंने प्राणों की आहुति चढ़ा दी

❑ **अशोक मोती**

आज से 38 वर्ष पूर्व (8 अक्टूबर) सूर्य अपनी किरणें बिखेरने ही वाला था कि मृत्यु ने उससे और लोकनायक से गुप्त गठबंधन कर लोकतंत्र के प्रहर जयप्रकाश को हमारे बीच से उठा लिया। जबतक इस महान योगी की हमारे बीच रहने की इच्छा रही मौत को बार-बार उनके दरवाजे से लौटना पड़ा। स्पष्टतः शरशय्या (डायलीसिस) पर पड़े भारतीय राजनीति के भीष्म पितामह की यह इच्छा मृत्यु ही थी। अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व उन्होंने जो संकेत दिए थे वे इस बात की पुष्टि करते हैं कि लोकनायक ने मौत को यह छूट दे रखी थी कि वह इन्हें घोर निद्रा में चुपके से उठा ले जाये। हुआ भी ऐसा ही। शांति का दूत इस दुनिया से इस कदर उठ गया कि किसी को पता भी नहीं चला।

मृत्यु के एक दिन पूर्व जब आपात-कालीन डायलीसिस (अंतिम) की प्रक्रिया चल रही थी लोकनायक ने अपने निजी चिकित्सक डॉ. सी. पी. ठाकुर को भरे गले से कहा था—डॉक्टर साहब, इस उधार की जिन्दगी से अब मुक्ति चाहता हूं।

इसी अंतिम डायलीसिस से कुछ क्षण पूर्व अपने पुराने अभिन्न मित्र श्री अच्युत पटवर्धन से भी उन्होंने अपनी इच्छा स्पष्ट कर दी थी। अच्युत द्वारा पूछे जाने पर कि 'आप कैसे हैं' जेपी ने कहा था—'लिगरिंग ऑन वेटिंग फॉर डेथ'। उपर्युक्त दोनों संकेत उनकी इच्छा-मृत्यु की पूर्व तैयारी को ही इंगित करते हैं।

लोकनायक जिन्होंने मृत्यु को महसूसा

जैसा आप जानते हैं कि जेपी की एक मृत्यु पहले भी मार्च, 1979 में हो चुकी थी। बम्बई के जसलोक अस्पताल में आधे घंटे तक उनकी हृदयगति रुकी रही थी। उन्हें मृत भी घोषित कर दिया गया। परंतु सच्चाई यह थी कि जेपी अपनी मृत्यु को वशीभूत कर उसे महसूस कर रहे थे। वैसे मृत्यु पर उनका शोध एवं विचार-मंथन एक लंबे अरसे से चल रहा था। जीते जी मृत्यु को महसूस करना, लोकनायक का एक सफल प्रयोग था। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि बम्बई से पटना लौटने पर निकट के अपने कई लोगों से उन्होंने कहा था कि बम्बई में आधे घंटे तक जब उनकी हृदयगति रुकी रही, उस समय भी उनके अंदर आंतरिक ज्ञान (इनर कॉनशेंस) मोजूद था। वे किसी दूसरी दुनिया में विचरण कर रहे थे।

बम्बई जाने से पूर्व जे. पी. की अपने मित्र श्री गंगाशरण सिंह प्रखर समाजवादी एवं साहित्यकार से मृत्यु पर अक्सर चर्चाएं हुआ करती थीं। बम्बई जाने से पूर्व, मृत्यु पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता—

'मरण हे! तुम मम श्याम समान' तथा 'मरण उगोर मोर मरण, कबे तुमि आमाके करिबे वरण।'

इत्यादि को सुनकर जेपी कहा करते—'रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा बल पर मृत्यु को बहुत ही 'फैसिनेटिंग बना दिया है? फिर लोग मृत्यु से डरते क्यों हैं?'

यह प्रश्न उनके मन में शायद तब तक उथल-पुथल मचाता रहा जब तक उन्होंने इस पर अपना शोध पूरा नहीं कर लिया। बम्बई से लौटने के बाद लोकनायक की, रवीन्द्रनाथ की उसी कविता पर प्रतिक्रिया, पहले से भिन्न थी। उनका कहना था *'मृत्यु सचमुच फैसिनेटिंग है। यह कोई भयावह चीज नहीं। मैं इससे डरता नहीं क्योंकि यह कष्टदायक नहीं है। मैंने इसे बहुत करीब से समझ लिया है।'* यह बात जेपी अपने कई मित्रों से कहा करते। फिर लोकनायक द्वारा कुछ ही दिन पहले यह कहा जाना 'लगता है मैं किसी और जगह से इस दुनिया को देख रहा हूं किसी को भी परेशानी में डाल सकता है। उनकी इस बात में छुपे रहस्य को समझना तो मुश्किल है लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि उन्होंने मृत्यु को बहुत ही अच्छी तरह समझ लिया था।

उनकी अंतिम पीड़ा

मृत्यु से कुछ समय पूर्व लोकनायक को कई पुराने श्लोक याद आने लगे थे जिन्हें उन्होंने कभी बचपन में पढ़ा था—'मुहूर्तम् ज्वलितम् श्रेयो न च घूमायितम् चिरम्'। यानी एक ही बार प्रज्वलित होकर समाप्त हो जाना, देर तक धुआं देते रहने से बेहतर है। इस श्लोक को वे बार-बार गुनगुनाते रहते थे। अपने चिकित्सक डॉ. सी. पी. ठाकुर से कई बार पूछते—'डॉ. साहब, डायलीसिस की अति आधुनिक पद्धति का आविष्कार हुआ या नहीं? इस पद्धति में समय की काफी बर्बादी होती है। अब मैं देश की जनता के लिए कुछ कर ही नहीं पाता तो इस जीवन को जीना निरर्थक ही तो है।' डॉ. ठाकुर के यह कहने

पर कि इसी डायलीसिस के कारण तो आप हमारे बीच है जो यह देश का सौभाग्य है कि आपका मार्गदर्शन इसे मिल रहा है, जे. पी. एक दूसरा श्लोक पढ़ा करते जिसमें उनके दिल का दर्द छुपा रहता—*'ऊर्ध्वबाहु विरौम्ये, नहि कश्चित् शृणोति में'* यानी *'अपनी दोनों बांहें उठाकर कहता हूं लेकिन मेरी कोई सुनता ही नहीं।'* स्पष्टतः देश में सत्ता की राजनीति जिस कदर चलने लगी थी उससे जेपी काफी दुखी थे और उनकी आंतरिक पीड़ा इस श्लोक में मुखरित होती थी। मृत्यु से कुछ हफ्ते पूर्व जेपी के समाजवादी मित्र पं. रामनंदन मिश्र जेपी से मिलने गये थे। श्री मिश्र उनसे बात कर जेपी के दर्द को महसूस किया था—*जेपी को देश की राजनतिक परिस्थिति में कितनी ठेस पहुंचायी है।* उन्होंने कहा—जेपी कोई चिन्ता मत कीजिए और शांति से परलोक जाइए। इस पर जेपी ने कहा था—मिश्रजी, मैं इस तरह जाऊंगा कि किसी को पता भी नहीं चलेगा। और जेपी सारे दर्द को अपने दिल में छिपाए चले भी गये।

मेरी इन बातों को कहने का मतलब लोकनायक की मृत्यु के कारणों का पता लगाना नहीं है अपितु अंतिम क्षणों में उनकी मनोवृत्तियों का विश्लेषण मात्र करना है। लोकनायक द्वारा दिये गये संकेत इतने स्पष्ट थे मानो उन्होंने विदा लेने की सारी तैयारियां पूरी कर ली हों।

यहां यह भी उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जेपी की अंतिम पीड़ा देश की सत्तालोलुप राजनीति ही रही। लोकनायक के अंतिम क्षणों में राजनीतिक चर्चा करने वाले अंतिम व्यक्ति उनके पुराने मित्र अच्युत पटवर्धन ही थे जो अकस्मात पटना आ पहुंचे थे। मृत्यु से एक ही दिन पूर्व 7 अक्टूबर को उन्होंने जेपी की आंतरिक पीड़ा को भांप कर जेपी से कहा था—

''मेरे जैसा व्यक्ति जो राजनीति से एक लंबे समय से बिल्कुल अलग है उसका भी सर देश की राजनीतिक स्थिति को देखकर शर्म से झुक जाता है। आपने तो देश की राजनीति को एक नयी दिशा ही दी थी। आपके हृदय पर जो गुजर रहा होगा उसे मैं अच्छी तरह महसूस कर रहा हूं।' यह सुनकर जेपी की आंखों में आंसू छलक पड़े थे, लेकिन जेपी ने उन्हें पलकों में भीतर ही समेट लिया था। अंतिम समय वे आंसुओं को निरर्थक नहीं गिराना चाहते थे। लेकिन वे आंसू निश्चय ही उनके दिल के अंदर छिपे दर्द को ही स्पष्ट करते थे। शायद सत्ता के भूखे लोगों को देखकर जेपी को तरस आती थी और उनके द्वारा की जाने वाली करतूतों के औचित्य को सिद्ध करने की दृष्टि से ही जेपी एक दूसरा श्लोक भी गुनगुनाते रहते थे—

'बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्'—श्लोक में व्यवहृत भूख से जेपी का मतलब सत्ता की भूख से ही रहा होगा। राजनेताओं में सत्ता की भूख को देखकर जे. पी. स्तब्ध थे और उन्होंने अंततः मौन भी धारण कर लिया था। उनकी अंतिम पीड़ा देश में प्रतिष्ठित हो रही सिद्धांतहीन राजनीति की पीड़ा थी। जनता पार्टी ने जो वादे किये थे तो पूरे नहीं हुए लेकिन लोकनायक ने अपने वादे पूरे किये। पटना के गांधी मैदान में जनता पार्टी के चुनाव-अभियान का समारम्भ करते हुए (एक विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए) *लोकनायक ने कहा—'मित्रों! अगर जनता पार्टी ने भी वैसा ही किया (कांग्रेस जैसा) तो जयप्रकाश जीवित नहीं रहेगा।'* वह भीष्म प्रतिज्ञा पूरी हुई। लोकनायक ने देश की बलिवेदी पर अपने प्राण की आहुति चढ़ा दी। सर्वोदय-जगत के महान चिन्तक दादा धर्माधिकारी के शब्दों में—

'लोकनायक ने अपने जीवन का ही भोग चढ़ा दिया कभी प्रसाद के लिए हाथ नहीं फैलाया।' ऐसी महान आत्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि। ❑

संपूर्ण क्रांति

❑ भवानी प्रसाद मिश्र

तुम वह डूबे हुए तारे हो
जो अंधेरा होने पर
सबसे पहले आओगे आसमान में
तुम्हारा ही वह नाम है
जो दीपित नहीं होगा मेरे गान में
मेरे गान को दीपित करेगा
और सीमित करेगा वह गान
आसमान को,
व्यापक करेगा गीत को
अंधेरे पर प्रकाश की जीत को
और करोड़ कंठ
एक साथ कहेंगे
''जयप्रकाश''!

× × ×

मगर तय है कि यह
उदास होने से नहीं होगा
निराश होने से तो होगा ही नहीं
हिम्मत और प्रसन्नता से
छोटे-छोटे कामों में
जुट जाने से होगा
लोगों के दुःख-दर्द पर
हंसते-हंसते
लुट जाने से होगा ! ❑

गांधी के ब्रह्मचर्य प्रयोग : नाट्य

मार पराजय

❑ राजेश कुमार

साहित्य की नाट्य-विधा में 'गांधी-बा' के ब्रह्मचर्य प्रयोग का यह नाट्य रूपांतरण साहित्य की एक अनमोल कृति है। आशा है कि नयी पीढ़ी इस नाट्य का प्रदर्शन कर नाट्य-विधा में निश्चय ही चार चांद लगा पायेंगे। इसी शुभेच्छा के साथ! –सं.

मोहन दास एक तरफ जहां गिरमिटिया लोगों के आत्मसम्मान, मूलभूत अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं, वहीं एक और लड़ाई लड़ रहे हैं जो नितांत व्यक्तिगत है और अंदर की है। इसको लेकर उनके अंतर्मन में काफी दिनों से द्वंद्व चल रहा है। बिस्तर पर इधर से उधर आधी रात के सन्नाटे व गहरी खामोशी में करवट बदल रहे हैं...

अंतर्द्वंद्व की उठती-गिरती लहरों के बीच मंच के पिछले हिस्से में हल्की नीली रोशनी उभरती है जहां दूसरे कमरे में सोयी हुई कस्तूर की धुंधली छाया दिखती हैं। उसके शरीर से एक आकृति धीरे-धीरे उठती है। उसकी वेशभूषा इतनी चुस्त है कि दूर से वस्त्रविहीनता का आभास दे रही हैं।

नीली रोशनी धीरे-धीरे गुलाबी में बदलने लगती है। सागर और जंगल से होकर गुजरने वाली हवा की सर्र-सर्राहट मादक ध्वनियों में परिवर्तित।

आकृति बह रही मादक बयार पर नृत्य करने लगती है। नृत्य धीरे-धीरे कामुक व उत्तेजक होता जाता है। धधकती हुई लपटों जैसी प्रचंड रूप धारण करने लगता है। लपलपाती लपटें चारों तरफ फैल रही हैं मानों सब कुछ जला देगी। तरह-तरह की काम व रति क्रीड़ाओं की भंगिमाएं प्रस्तुत करते हुए नृत्य क्रमशः उत्कर्ष की तरफ जाने लगता है...

मोहनदास को नींद नहीं आ रही है। दरवाजे के एक कोने में रखी मिट्टी के घड़े से पानी निकालकर पीते हैं। खिड़की के पास आकर बाहर अंधेरे में यूं ही कुछ ढूंढ़ने लगते हैं। फिर लौटकर बिछावन पर बैठ जाते हैं। न चाहते हुए भी उनका ध्यान पार्श्व के कमरे में सोयी कस्तूर की तरफ चला जाता है। अपना ध्यान उस तरफ से हटाने के लिए फौरन खड़े हो जाते हैं। घड़ी की तरफ देखते हैं। रात काफी हो चुकी है। नींद न आने पर मोहनदास मेज के पास आते हैं। कुर्सी पर बैठ जाते हैं। लैंप जलाते हैं। हल्की लौ को धीरे-धीरे तेज करने लगते हैं। लैंप की पीली रोशनी में मोहनदास का अकलांत चेहरा साफ नजर आने लगता है।

अंदर वाले कमरे का दरवाजा हल्की आवाज के साथ खुलता है। दरवाजे पर कस्तूर खड़ी है। अंदर आती है। मोहनदास के करीब आकर खड़ी हो जाती है।

कस्तूर : क्या बात है?
मोहनदास : (लौ को अपलक देखते रहते हैं।)
कस्तूर : नींद नहीं आ रही है?
मोहनदास : (लौ को तेज-कम करते रहते हैं।)
कस्तूर : क्या हो गया है तुम्हें?
मोहनदास : (कस्तूर की तरफ मुड़कर) क्या हुआ है मुझे!
कस्तूर : काफी बदल गये हो।
मोहनदास : (दूसरी तरफ देखने लगते हैं।) मुझे तो नहीं लगता।
कस्तूर : रोज देर से आते हो।
मोहनदास : आजकल इतना काम आ पड़ा है कि...
कस्तूर : कब नहीं रहा तुम्हारे पास काम?
मोहनदास : अखबार में इतने काम होते हैं...
कस्तूर : कि लौटते-लौटते रात हो जाती है।
मोहनदास : दिनभर काम करते-करते थक जाता हूं...
कस्तूर : कि यहीं बैठक में सो जाते हो।
मोहनदास : बड़ी गहरी नींद आ जाती है।
कस्तूर : इसलिए अलग चारपाई कर ली?
मोहनदास : (कुछ जवाब नहीं देते हैं।)
कस्तूर : मुझे तो लगता है, तुम जान-बूझकर...
मोहनदास : (चुप)।
कस्तूर : क्या नाराज हो मुझसे?
मोहनदास : कैसी बात कर रही हो कस्तूर?
कस्तूर : तो परेशान क्यों हो?
मोहनदास : (उठकर एक तरफ चल देते हैं।)
कस्तूर : अब तो गिरमिटियों की हालत पहले से बेहतर है।
मोहनदास : (खड़े होकर सामने देखने लगे हैं।)
कस्तूर : लोग उन्हें सम्मान की नजर से देखने लगे हैं।
मोहनदास : (कहीं खो जाते हैं।)
कस्तूर : फिर इस आधी रात में कौन-सी लड़ाई लड़ रहे हो?
मोहनदास : (वापस चेतन अवस्था में आते हुए) है एक लड़ाई।
कस्तूर : क्या मैं नहीं जानती?
मोहनदास : मेरे अलावा कोई नहीं जानता।
कस्तूर : रोज बाहर लड़ते रहते हो, उसके सिवा क्या हो सकती है?
मोहनदास : ये बाहर की नहीं, अंदर की लड़ाई है।
कस्तूर : समझ गयी, जहाज पर से उतरने में गोरों ने तुम्हारे साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उन्हें उसकी सजा दिलाने की सोच रहे हो...
मोहनदास : मैं हमलावर लोगों को दोष नहीं देता। वे गलत खबर से गुमराह हो गये थे।
कस्तूर : फिर बच्चों की पढ़ाई को लेकर चिन्तित होंगे।
मोहनदास : नहीं, वो बात नहीं है।
कस्तूर : तो हिन्दुस्तान से चाचाजी की कोई चिट्ठी आयी है?
मोहनदास : नहीं।

कस्तूर : फिर अंदर की लड़ाई और क्या हो सकती है?

मोहनदास : नितांत व्यक्तिगत लड़ाई।

कस्तूर : व्यक्तिगत!

मोहनदास : अपनी।

कस्तूर : लेकिन तुम्हारी अपनी लड़ाई किससे है?

मोहनदास : (थोड़ी देर गौर से देखने के बाद) तुमसे।

कस्तूर : (चौंककर) मुझसे!

मोहनदास : हां कस्तूर तुमसे।

कस्तूर : और मुझे मालूम नहीं।

मोहनदास : कुछ तो मालूम है ही...

कस्तूर : ठीक कहते हो, न जाने क्यों मुझे भी यही लग रहा था कि तुम्हारी लड़ाई मुझसे है। इसलिए मैं भी एक स्तर पर अपनी लड़ाई लड़ रही थी। ढूंढ़ रही थी तुम्हारे परिवर्तन की कुंजी। (कंधे पर हाथ रखकर भावुक होते हुए) मैं हर बात में तुम्हारे साथ हूं। सच-सच बताओ, तुम्हारा यह व्यवहार किस वजह से है? इसकी वजह मैं हूं या कोई और?

मोहनदास : कोई और भला कौन हो सकता है?

कस्तूर : मैं क्या कह सकती हूं।

मोहनदास : एक पत्नी व्रत पालना पति का धर्म है और मैं अपने धर्म से आज तक नहीं डिगा।

कस्तूर : फिर तो कोई संदेह ही नहीं कि वह कारण मैं हूं।

मोहनदास : (कुछ क्षण सोचकर) तुम नहीं, मैं स्वयं हूं।

कस्तूर : लेकिन तुमने ऐसा क्या किया है जिसके लिए...

मोहनदास : यही तो मैं तुमसे कहना चाहता था लेकिन व्यस्तता के कारण इतना समय नहीं मिला कि तुम्हें यह सब बता सकूं।

कस्तूर : मैं तो कहती हूं, अगर मैंने तुम पर कोई जुल्म किया है तो जैसे गोरों से लड़ते हो, मुझसे लड़ो।

मोहनदास : (कस्तूर के कंधे को छूकर) कस्तूर...

कस्तूर : कहो।

मोहनदास : मैं इन्हीं बच्चों से संतुष्ट हूं।

कस्तूर : (मोहनदास का मुंह देखने लगती है।) मैं कब ज्यादा की इच्छा जाहिर की?

मोहनदास : पति-पत्नी का संबंध संतानों के लिए होना चाहिए। आनंद या भोग के लिए नहीं। अगर वे ऐसा करते हैं तो मनुष्य और जानवरों में क्या अंतर रह जायेगा? *(कस्तूर को हंसी आ जाती है।)*

कस्तूर : क्या मैं ऐसा कहती हूं?

मोहनदास : जानवर समय-कुसमय नहीं जानते।

कस्तूर : मनुष्य और जानवर में फर्क है।

मोहनदास : वासना हमें जानवर बना देती है।

कस्तूर : लेकिन जानवर में सिर्फ संवेग होता है। मनुष्य में विवेक और संवेग दोनों।

मोहनदास : परंतु क्रिया तो समान है।

कस्तूर : मनुष्य में यौन क्रिया मानवीय प्रेम की अभिव्यक्ति होती है जबकि पशु में यह मात्र एक जैविक क्रिया।

मोहनदास : अब हम इस स्थिति में पहुंच गये हैं जब वासना और संकल्प में फर्क समझना होगा।

कस्तूर : संकल्प-वंकल्प मैं नहीं जानती। मैं तो यह जानती हूं कि जब तुमने चाहा, दूर चले गये...जब चाहा, पास आ गये। उसमें मेरी कोई भूमिका नहीं।

मोहनदास : कस्तूर, तुम गलत समझ रही हो।

कस्तूर : नहीं, मैं तुम्हें अच्छी तरह समझती हूं। तुम दर्जी की तरह निर्णय सिलते हो। दर्जी कपड़ा सिलता है और दूसरे को पहना देता है। चाहे वह तंग हो या ढीला-ढाला। तुम निर्णय लेते हो और मुझे पहनाते रहे हो। जिस संकल्प की तुम बात कर रहे हो, क्या उसके लिए विश्वास जरूरी नहीं। जबकि उसके एक किनारे पर तुम हो और दूसरे पर तुम्हारी पत्नी।

मोहनदास : कस्तूर, मैं तुम्हें दोष नहीं देता हूं...(स्वर व्यथित होने लगता है।) अपने से बार-बार हारना कई बार हिम्मत तोड़ देता है। आखिर अपनी ही वासनाओं से कब तक हारते रहें?

कस्तूर : क्या ईश्वर का हस्तक्षेप कोई मायने नहीं रखता?

मोहनदास : (कुर्सी पर बैठकर) मुझे लगता है, हमारी कमजोरियां ही कभी-कभी चट्टान बनकर खड़ी हो जाती हैं। हम उनसे टकराते हैं पर वे टस से मस नहीं होती। अगर वे कमजोरियां हैं तो इतनी अचल कैसे हो जाती हैं?

कस्तूर : (मोहनदास की तरफ बढ़ते हुए) हम पति-पत्नी हैं, एक-दूसरे के सुख-दुःख, हार-जीत में शरीक हैं। अगर हम एक-दूसरे को हारने का कारण मानकर बीच में दीवार खड़ी करेंगे तो फिर काहे को पति-पत्नी?

मोहनदास : मैं भी ये सब तर्क अपने-आपको देकर शांत करने की कोशिश करता हूं पर लगता है ये सारे तर्क वासनापूर्ति का रास्ता दिखाते हैं।

कस्तूर : लेकिन मनुष्य अपनी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को कैसे रोक सकता है?

मोहनदास : रोक सकता है...जरूर रोक सकता है। अपनी काम वासना

को जनसेवा जैसी ऊंची भावना में बदलकर।

कस्तूर : बदलने की क्या आवश्यकता है।

मोहनदास : एक समय में दो घोड़ों पर सवारी नहीं हो सकती। एक तरफ गर्भवती पत्नी हो और दूसरी तरफ जनसेवा का निमंत्रण...तो कोई भी मनुष्य बेफिक्र होकर जनसेवा के कार्य में कूद नहीं सकता है।

कस्तूर : अगर सांप रास्ते में मिल जाये तो उससे कैसे निबटोगे? मंत्र संकल्प करके खड़े रहोगे?

मोहनदास : अगर हमें यह न मालूम हो सांप के काटने का मतलब मृत्यु है तो न हमारे संकल्प का कोई अर्थ है, न वहां से भागने का।

कस्तूर : जिसे सांप कह रहे हो, मैंने तो आज तक नहीं सुना कि उसके काटे कोई मर गया हो। ईश्वर ने जो भी दिया है वह जीने के साधन के रूप में दिया है। अगर तुम मुझसे दूर रहकर सुरक्षित हो तो रहो। पर यह जान लो, मैं उनमें से किसी भी शंका या भय का कारण नहीं।

मोहनदास : (आश्रम की तरफ खुलने वाली खिड़की की तरफ देखने लगते हैं।)

कस्तूर : न तुम्हारे किसी हार का कारण...

मोहनदास : (खिड़की पर केहुनी टिकाकर बाहर देखने लगते हैं।)

कस्तूर : कारण अपने आपमें ढूंढ़ना होगा।

मोहनदास : (जैसे कुछ सोच रहे हों?)

कस्तूर : क्या सोच रहे हो?

कस्तूर : पंक्तियां सुबह याद करना। रात बहुत हो चुकी है, सो जाओ। कल तुम्हें बोअर्स युद्ध पर विचार करने के लिए ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन की मीटिंग में भी जाना है।

(कस्तूर लैंप लेकर अंदर चली जाती है। मोहनदास अकेले रह जाते हैं। बाहर झींगुर तेज आवाज में बोलने लगते हैं।)

मोहनदास : (खिड़की से बाहर देखते हुए) निष्कुलानंद ने कहा है... (पंक्तियां) त्याग न टिके रे वैराग्य बिना...

(लौटकर मोढ़े पर बैठ जाते हैं।) त्याग? किसका त्याग? पत्नी का त्याग या वासना का? अपने सहयात्री का त्याग, यह कैसा नियम? नहीं, कस्तूर उनका सत्य है। उसे भला मैं कैसे त्याग सकता हूं?

(तनाव में खड़े हो जाते हैं।) लेकिन वासना। वासना तो उनके बीच उस सत्य का एक अवरोध है जो पर्दा बना लटका है।

(दूर कहीं रात के तीन बजने के घंटे की आवाज)

(धीरे-धीरे आगे की तरफ बढ़ते हुए) नहीं, मैं हार नहीं मानूंगा।

(झींगुर की आवाज के साथ बैठक अंधेरे में बैठती जाती है।)

(दो)

(दादा अब्दुल्ला सेठ खिड़की से बाहर देख रहे हैं जहां से बोअर युद्ध में होने वाले गोलाबारी की आवाज रह-रहकर सुनाई दे रही है। लौटकर चटाई पर बैठे अखबार देख रहे मोहनदास से अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं।)

अब्दुल्ला : गांधी भाई, यह जंग तो अंग्रेजों और बोअर के बीच है। हम इसमें क्या कर सकते हैं?

मोहनदास : हमें एक बात याद रखनी चाहिए कि दक्षिणी अफ्रीका में हमारी जो भी अच्छी-बुरी स्थिति है, वह अंग्रेज राज्य की प्रजा होने के कारण है।

अब्दुल्ला : लेकिन इस बात को भी कैसे नजरअंदाज कर दें कि एक छोटा-सा बोअर राज्य इतनी बड़ी ताकत से लड़ रहा है। अंग्रेजों को मदद पहुंचाकर आखिर हम उसकी बर्बादी का कारण क्यों बनें?

मोहनदास : लेकिन तटस्थ रहकर तो अपने को और हाशिये पर ढकेल देंगे।

अब्दुल्ला : जबकि हकीकत यह है, दोनों ही हमलोगों पर जुल्म करते हैं। (कस्तूर आकर चटाई पर रखे नाश्ता के बर्तन उठाकर ले जाती है।)...दोनों हिन्दुस्तानियों से नफरत करते हैं।

मोहनदास : पर क्या यह उचित होगा कि हम उनके सामने अधिकारों की रक्षा के लिए दुहाई भी दें, उनकी प्रजा होने पर गर्व भी करें और उनकी बर्बादी का नजारा भी देखते रहें। सिर्फ इसलिए कि वे हमसे दुर्व्यवहार करते हैं।

अब्दुल्ला : गांधी भाई, आप सभी को सहयोग देने की बात कर रहे हैं जबकि खुद अंग्रेजों से लड़ रहे हैं...

मोहनदास : लड़ रहे हैं अपने अधिकारों के लिए। और सहयोग दे रहे हैं क्योंकि ये हमारा नैतिक दायित्व है।

अब्दुल्ला : लेकिन हमने तो हथियार के नाम पर कभी तलवार तक नहीं उठायी है।

मोहनदास : ये उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उन्हें ये बताना कि हम उनके साथ हैं।

अब्दुल्ला : गोरे हमें कुली बनाके रखेंगे। और हम उनका सामान ढोयेंगे?

मोहनदास : (मुस्कुरा पड़ते हैं।) तो क्या गलत करायेंगे। इसी काम के लिए हम गिरमिटियों को बरसों पहले लाये थे।

अब्दुल्ला : और यही क्या जरूरी है कि हम सहायता का प्रस्ताव रखें और वे उसे मान ही लें।

मोहनदास : देखिए, आपकी सब बातें अपनी जगह सही हैं, लेकिन हमें इसमें अपनी तरफ से कोताही नहीं करनी चाहिए। ईमानदारी से प्रयत्न किया जाये तो ईश्वर भी हमारी सहायता करेगा। क्या सम्मानजनक काम है और क्या असम्मानजनक, इसकी हमें चिन्ता नहीं करनी। सेवा में इसका कोई स्थान नहीं।

(कस्तूर ट्रे में चाय लेकर आती हैं)

कस्तूर : (मोहनदास की तरफ एक ग्लास रखते हुए) ये आपकी चाय...

अब्दुला : (मजाक में) गांधी भाई की खास है क्या?

कस्तूर : बिना शक्कर और दूध की काली चाय है।

मोहनदास (मजाक के मूड में) काले लोग काली चाय ही तो पीयेंगे।

अब्दुल्ला : अपनी चाय का रंग देखकर) मुझे आपने गोरा समझ रखा है?

मोहनदास : (कस्तूर की तरफ देखकर, शरारत से मुस्कुराते हुए) इस रंगभेद की शिकायत कस्तूर से करिये।

कस्तूर : (जाते-जाते दरवाजे पर रुककर) इन्होंने दूध छोड़ दिया है। आपको भी अगर काली चाय...

अब्दुल्ला : (बात काटते हुए) अरे नहीं-नहीं...(फिर मजाक के मूड में) अभी तो गांधी भाई के फरमान का पालन करना है। हर मोर्चे पर अंग्रेजों को सहयोग देना है चाहे वह मोर्चा चाय पीने का ही क्यों न हो...(कहते-कहते हंसने लगते हैं। कस्तूर अंदर चली जाती है। चाय की हल्की चुस्की लेकर) जो कहिए गांधी भाई, हमारी हर सेवा के पीछे किसी और का सहयोग होता है जिसको हम उतना स्थान नहीं देते, जितने की वह हकदार है।

मोहनदास : आप किस सहयोग की बात कर रहे हैं?

अब्दुल्ला : घर में रहने वाली पत्नी की। अगर घर के अंदर इनका सहयोग न रहे तो बाहर हम किसी की क्या सेवा करेंगे? (चाय की चुस्की लेकर) गांधी भाई, मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि आपकी लड़ाई में सबसे बड़ा योगदान आपकी पत्नी के सेवाभाव का है। जब भी इन्हें देखता हूं, घर के काम में लगे देखता हूं।)

मोहनदास : (चाय की चुस्की लेते रहते हैं।)

अब्दुल्ला : बाहर का मोर्चा आपने संभाल रखा है तो अंदर का इन्होंने।

मोहनदास : (मौन रहकर सुनते रहते हैं।)

अब्दुल्ला : दोनों में कोई मोर्चा कमजोर पड़ जाये तो लड़ाई चल नहीं सकती।

मोहनदास : (अब्दुल्ला सेठ को देखने लगते हैं।)

अब्दुल्ला : सारी ऊर्जा बीबी-बच्चों में खरच हो जाये।

मोहनदास : (मुस्कुराने लगते हैं।)

अब्दुल्ला : आप मुस्कुरा रहे हैं? मैं मजाक नहीं कर रहा हूं।

मोहनदास : एक बात याद आ गयी...

अब्दुल्ला : कौन-सी?

मोहनदास : मैंने भी इसी तरह एक बार ग्लैडस्टन के प्रति मिसेज ग्लैडस्टन के प्रेम की प्रशंसा रायचन्द भाई के सामने की थी। मैंने कहीं पढ़ा था कि पार्लियामेंट की सभा में भी मिसेज ग्लैडस्टन अपने पति को चाय बनाकर पिलाती थी...

अब्दुल्ला : बिल्कुल आपकी पत्नी की तरह।

मोहनदास : मिसेज ग्लैडस्टन की बात से मैं अभिभूत था...

अब्दुल्ला : तो रायचन्द भाई ने क्या कहा?

मोहनदास : पहले तो वे चुपचाप सुनते रहे फिर मुस्कराकर कहा...

अब्दुल्ला : (सुनने लगते हैं।)

मोहनदास : मोहनदास इसमें महत्त्व की कौन-सी बात मालूम होती है? मिसेज ग्लैडस्टन का पत्नीत्व या उसका सेवाभाव?

अब्दुल्ला : तो आपने क्या जवाब दिया?

मोहनदास : जवाब क्या देता, मैं तो स्वयं सवाल की गहराई तक पहुंचने की कोशिश कर रहा था कि रायचन्द भाई बोले, 'अच्छा मोहनदास, मैं इस बात को दूसरी तरफ से बताता हूं। यदि ग्लैडस्टन की बहन होती या उनकी वफादार नौकरानी होती तो क्या वह उतने ही प्रेम से चाय देती? ऐसी बहनों, ऐसी नौकरानियों के उदाहरण क्या हमें आज नहीं मिलते? और नारी जाति के बदले ऐसा प्रेम तुमने नर जाति में देखा होता तो क्या तुम्हें सानंद आश्चर्य न होता?'...

अब्दुल्ला : क्या सोचते रहे?

मोहनदास : सेवा और पति-पत्नी के संबंधों के बीच कोई रिश्ता है? सेवा बड़ी या संबंध?

अब्दुल्ला : वे तो बिल्कुल जीता-जागता सवाल छोड़ गये थे।

मोहनदास : नौकर वाली बात मुझे अक्सर उद्वेलित करती है। दोनों के सेवाभाव में क्या अंतर है? नौकर का सेवाभाव क्या पत्नी के सेवाभाव से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं।

अब्दुल्ला : पति-पत्नी के बीच तो स्थाई और

अटूट प्रेम संबंध होता है। प्रेम में ही सेवाभाव निहित है। दोनों का समर्पण और एकात्म होना उसका आधार है।

मोहनदास : लेकिन नौकर से ऐसा कोई रिश्ता नहीं होता। नौकर का समर्पण काम के प्रति तो उसका गुण हो सकता है परंतु मालिक के प्रति समर्पण न तो आवश्यक है और न संभव। रायचन्द भाई द्वारा बोया गया बीज मन में वृक्ष की तरह उग आया है। एक तरह से वह मेरे व्यक्तित्व का हिस्सा हो गया है। जब वह झकझोर उठता है तो बेचैनी बढ़ जाती है। मन में उतनी उथल-पुथल मचती है कि मैं चलते-फिरते, काम करते उसी के बारे में सोचता रहता हूं...

अब्दुल्ला : तो किस नतीजे पर पहुंचे आप?

मोहनदास : यही कि सेवा एक बात है, दाम्पत्य जीवन दूसरी बात। दोनों की दिशाएं अलग-अलग तो नहीं?

अब्दुल्ला : (अचानक कुछ याद आते) फिलहाल मेरी दिशा आपसे अलग है। मुझे अभी बंदरगाह जाना है। कुरलैंड जहाज से कुछ रिश्तेदार आ रहे हैं। बेगम साहिबा का सख्त हिदायत है, उन्हें साथ लेकर जाऊं।

मोहनदास : (मुस्कराकर) तब तो जरूर जाइये अब्दुल्ला भाई, नहीं तो रात को रोटी नसीब न होगी। और गोरे इतने दयालु नहीं हो गये कि गिरमिटियों को होटल में खाने दें।

(दोनों हंसने लगते हैं। मोहनदास अब्दुल्ला सेठ को छोड़ने दरवाजे तक जाते हैं। वहां से लौटते हैं तो घर के कामों से निबटकर कस्तूर अंदर आती है। युद्ध की आवाज सुनकर खिड़की की तरफ देखने लगती है।)

कस्तूर : लड़ाई तो रुकने का नाम ही नहीं ले रही है...

मोहनदास : और अंदर की तरफ बढ़ती चली आ रही है...

कस्तूर : मुझे डर लग रहा है।

मोहनदास : पता नहीं क्या होगा...

कस्तूर : बड़ी जल्दी चले गये अब्दुल्ला भाई।

मोहनदास : कुछ काम था उन्हें।

कस्तूर : चाय ठीक थी?

मोहनदास : अब्दुल्ला भाई तुम्हारी सेवा से अभिभूत थे।

कस्तूर : ये तो मेरा धर्म है।

मोहनदास : कैसा धर्म?

कस्तूर : पति की सेवा करना।

मोहनदास : सिर्फ पति हूं इसलिए। इससे अलग हमारा कोई रिश्ता नहीं?

कस्तूर : इससे अलग और क्या रिश्ता हो सकता है?

मोहनदास : दायरा बढ़ाकर तो देखो...

कस्तूर : जरूरत क्या है?

मोहनदास : जरूरत से बढ़कर भी कुछ होती है।

कस्तूर : मेरे लिए यही सब कुछ है।

मोहनदास : समझने की कोशिश क्यों नहीं करती?

कस्तूर : मैं कुछ नहीं समझना चाहती।

मोहनदास : (झुंझलाकर) हां, तुम कुछ समझ भी नहीं सकती।

कस्तूर : (उत्तेजित होकर) जब तुम इतना समझते हो कि कस्तूर कुछ नहीं समझती...वह अपने बंधनों को साथ लेकर यहां आयी है...वह उनकी गुलाम है तो यह सब शिकायत क्यों?

मोहनदास : कोशिश करके तो देखो, कोशिश से क्या नहीं हो सकता।

कस्तूर : तुम कहते कुछ हो...। यह क्या है, यह क्या हिंसा नहीं?

मोहनदास : (कांप सा जाते हैं।) हिंसा! मैं हिंसा कर रहा हूं?

कस्तूर : हां कर रहे हो...करने वाला नहीं जानता, जिस पर होती है वही जानता है।

(गोलाबारी की आवाज)

मोहनदास : (खिड़की की तरफ देखकर) युद्ध!...

कस्तूर : मुझे नींद आ रही है।

मोहनदास : मुझे अभी नहीं आ रही...

कस्तूर : मैं सोने जा रही हूं।

मोहनदास : मैं कुछ देर पढ़ूंगा...

(कस्तूर जाते वक्त रुककर मोहनदास की आंखों में आंखें डालकर देखती हैं फिर मुड़कर अंदर कमरे में चल देती है। मोहनदास टेबल पर से किताब उठाकर मोढ़े पर आकर बैठ जाते हैं।)

मुझे अपनी पत्नी के साथ कैसा संबंध रखना चाहिए?...

(कमरे में जाकर कस्तूर लैंप की लौ कम कर बिछावन पर लेट जाती है। हल्की नीली रोशनी फैल जाती है।) पत्नी को विषय योग का वाहन बनाने में पत्नी के प्रति वफादारी कहां रहती है? जब तक मैं विषय वासना के अधीन रहता हूं, तब तक तो मेरी वफादारी का मूल्य साधारण ही माना जायेगा।

(मोहनदास मोढ़े पर बैठकर किताब पढ़ने लगते हैं। नेपथ्य से गोलाबारी की आवाज।)

जब चाहूं तब ब्रह्मचर्य का पालन कर लूं...लेकिन मेरी अशक्ति अथवा आसक्ति ही मुझे रोक रही है...एक अंधेरी गुफा से गुजर रहा हूं, कहां पहुंचूंगा पता नहीं...

(धीरे-धीरे अंदर कमरे का प्रकाश नीले से बैंगनी रंग में तब्दील हो जाता है। अग्नि के चटखने व जलने की आवाज। मोहनदास अपना मन पढ़ने में केन्द्रित करना चाहते हैं परंतु रह-रहकर ध्यान बिस्तर पर सो रही कस्तूर पर ही चला जा रहा है जहां वह बार-बार करवट बदल रही है। मोहनदास एक झटके से किताब बंदकर अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं। किताब हाथ से छूटकर मोढ़े पर गिर पड़ती है।) *(नई धारा से 'साभार')* ❑

'बा'

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.

मोहनदास हर कदम पर अपमानित होते थे, पर हर हार उन्हें सिखाती भी थी। एक बार वे प्रिटोरिया में बाल कटवाने के लिए एक गोरे के सैलून में घुस गये। गोरे ने उन्हें बाहर कर दिया। मोहनदास को एक क्षण को बुरा लगा। परंतु दूसरे ही क्षण सोचा अगर यह गोरा कालों के बाल काटने लगेगा तो उसके गोरे ग्राहक इस सैलून में आना छोड़ देंगे। उन्हें याद आया, अपने भारत में भी यही होता है। वहां उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों के बाल अपने नाई को नहीं काटने देते। मोहनदास ने नाराज होने के बजाय बाल काटने के औजार खरीद लिये। आगे पीछे दो शीशे लगाकर अपने बाल काट लिये। जब कचहरी गये तो साथियों ने मजाक बनाया कि क्या चूहों से बाल कटवाये हैं। उन्होंने तपाक से जवाब दिया, बाल अपने ही हैं, मांगे हुए नहीं। धीरे-धीरे यह कला विकसित होती गयी और वे बच्चों के बाल भी स्वयं काटने लगे।

1899 में भारत में अकाल पड़ा था। मोहनदास ने एक सहायता कोष स्थापित किया था। उस समय तक वे इतने लोकप्रिय हो गये थे कि अफ्रीकियों, धनी भारतीयों ने खुलकर दान दिया। यहां तक कि गिरमिटिया ने भी सामर्थ्य अनुसार दान दिया। इस समर्थन की भावना ने मोहनदास और कस्तूरबा का मन मोह लिया।

बोअर्स और ब्रिटिशर्स के बीच सोने की खानों को लेकर कई वर्षों से तनातनी चली आ रही थी, एकाएक दोनों के बीच लड़ाई चालू हो गयी। भारतीय उस लड़ाई का हिस्सा बनने के लिए तैयार नहीं थे। मोहनदास की सहानुभूति बोअर्स के साथ थी। लेकिन महारानी की प्रजा होने के कारण बोअर्स का साथ देना संभव न था। उसका दुष्प्रभाव भारतीय गिरमिटियों पर होता। उन्होंने उनकी मदद करने का एक अहिंसक तरीका निकाला। बिना हथियारों के लड़ाई में शामिल होने का। उन्होंने चालीस लोगों को नेतृत्व के लिए तैयार किया, लगभग आठ सौ गिरमिटियों को उनके मालिकों ने प्रस्तावित एम्बुलेंस की टुकड़ी में शामिल होने की अनुमति दे दी। तीन सौ सामान्य नागरिक तैयार हो गये। पहली बार तो मोहनदास को एम्बुलेंस के रूप में शामिल करने से इनकार कर दिया गया। उनका तर्क था भारतीय डरपोक और धोखेबाज होते हैं। लेकिन जब बोअर्स ने लेडी स्मिथ को घेर लिया और गोरी सेना को हानि पहुंचाई तो अफसरान को एम. के. गांधी की अहिंसक सेना याद आयी। अपने पहले निर्णय को पलटकर अहिंसक सेना को युद्ध के घायल सैनिकों की सेवा के लिए स्वयं, वाहन, पोशाक आदि सुविधाएं देने के वायदे के साथ, बुलाया। बाद में छतीस अहिंसक सिपाहियों को उनकी लगन और सेवा के लिए वार मेडल से सम्मानित

किया गया। कस्तूरबा ने कहा, 'अहिंसा ही हिंसा से बचाती है।'

जब मोहनदास अहिंसक सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में थे तो उन्हें पता चला कि चौथा बच्चा कस्तूरबा के गर्भ में है। इस समय पूरा घर कस्तूरबा की सल्तनत थी। वह उसकी सम्राज्ञी और सेविका भी थी। वह बच्चों के साथ पूरे हिसाब-किताब से रहती थी। हालांकि जीवन में पहली बार घर की स्वतंत्र स्वामिनी बनी थी। स्वतंत्रता जितनी आवश्यक और आकर्षक है, कर्तव्य का उतना ही बड़ा अंकुश भी सहन करना पड़ता है। अपनी तरह रहना, अपनी चाल चलना, बच्चों की अपने और उनके हिसाब से देखभाल करना और अब नये मेहमान के स्वागत की तैयारी करना जितना अच्छा लगता था उतना ही डराता भी था। डरबन में जो नये मित्र बनाये थे उनके यहां जाना और बुलाना, मोहनदास की कम से कम चिन्ता करने का निरंतर प्रयत्न करते रहना...।

धीरे-धीरे प्रसव का समय नजदीक आता गया। इस बार कस्तूरबा और अधिक कमजोरी अनुभव कर रही थी। लेकिन चुप थी। मोहनदास भी महसूस कर रहे थे कि इस बार फिर वे अपनी कमजोरी पर नियंत्रण नहीं कर पाये। वे कस्तूरबा की बात भूले नहीं थे, 'मैं तीन बच्चों से संतुष्ट हूं। पति-पत्नी का मिलन संतानोत्पत्ति के लिए होना चाहिए। मनुष्य...जानवर भी समय पर मेल-मिलाप करते हैं।' मोहनदास को लगता था मेरे सोच और आदर्शों के सामने मेरी ही कमजोरियां किसी बाहुबली की तरह आकर खड़ी हो जाती हैं और मेरे खेल में मुझे ही परास्त कर देती हैं। कस्तूरबा का जरा भी दोष नहीं होता।

मोहनदास के मन पर एक तरफ अपने असंयम का भार था, दूसरी ओर कस्तूरबा की बढ़ती कमजोरी ने चिन्तित किया हुआ था। दिन पूरे होने को आये थे, मोहनदास घर पर रहकर अधिक से अधिक समय कस्तूर की देखभाल करने की कोशिश करते थे। हालांकि उसकी देखभाल डॉक्टर कर रहे थे। कभी-कभी कस्तूरबा कहती थी, 'यह भुगतान तुम्हारा ही दिया हुआ है...'वे फीकी-सी हंसी हंस देते थे। अंदर ही अंदर लगता था दिल में कांटा चुभ गया। जब मोहनदास नहलाते थे तो उन्हें लगता था कि एक श्रवण कुमार है जो उन्हें पिता से लेकर कस्तूर तक और उस कोढ़ी तक, सेवा के लिए प्रेरित करता है। शायद थोड़ा बहुत श्रवण कुमार सबके भीतर होता है। किसी के अंदर सुप्त और किसी के अंदर जाग्रत अवस्था में रहता है।

कस्तूरबा कराह रही थी। मोहनदास काम में व्यस्त थे। कराहना एकाएक सुनाई पड़ा वे काम छोड़कर पहुंचे। दर्द एकाएक इतना तेज हो गया था कि किसी डॉक्टर को बुलाकर लाना संभव नहीं था। दर्द की ऐसी पराकाष्ठा प्रसव के समय ही होती है। मोहनदास को और तो कुछ नहीं सूझा, उन्होंने स्वयं तैयारी आरंभ कर दी। मोहनदास के मन में कचोट थी कि यह दूसरा अवसर है जब उसकी निरंकुश काम भावना ने इस बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया, जहां कुछ भी संभव है। उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। इस बीच उन्होंने प्रसव के बारे में बहुत-सी किताबें पढ़ीं थीं। चाकू उबाला, गर्म पानी किया। उन्होंने अपने फर्स्ट एड बॉक्स से रबर के दस्ताने निकाले। जापे की पूरी तैयारी कर ली। कस्तूरबा ने देखा तो वह उग्र विरोध करने लगी, 'मर जाना मंजूर पर तुमसे प्रसव नहीं कराऊंगी।' मोहनदास उसे हर तरह समझा रहे थे, 'इस हालत में तुम्हें छोड़कर डॉक्टर को बुलाकर लाना संभव नहीं है। डॉक्टर मर्द हो या औरत वह मुझसे ज्यादा गैर है। हम दोनों पति-पत्नी हैं...हर स्थिति में साथ रहे हैं। पहले प्रसव में भी मैं डॉक्टर का सहायक था। जब तक तुम इस नजरिए से नहीं सोचोगी, तुम्हारी झिझक नहीं निकलेगी। जन्म लेने वाला न डॉक्टर को जानता है न मुझे। वह किसी का इंतजार नहीं करेगा। न वह हमारा तुम्हारा संकोच और धर्म संकट समझेगा। तुम शांत होकर आने वाले मेहमान के बारे में सोचो, वही हमारा बससे बड़ा अतिथि है।'

दर्द चर्म बिन्दु पर था। कस्तूर पसीने में बुरी तरह सराबोर थी जैसे जल में डुबकी लगायी हो। मोहनदास धीरे-धीरे पेट सहला रहे थे। हल्का-हल्का दबाव डालकर बच्चे को नीचे की तरफ खिसका रहे थे। कस्तूरबा दर्द और पत्नी-धर्म के बीच बेहाल थी। मोहनदास का हाथ डॉक्टर की तरह सधा नहीं था पर कस्तूर को उनके हाथ का स्पर्श राहत और सुरक्षा का अहसास दे रहा था। मोहनदास मनोयोग से काम में लगे थे। कस्तूरबा चूंकि तीन बच्चों को जन्म दे चुकी थी, वह भी मुट्ठियां भींचकर जोर लगा रही थी। जैसे ही बच्चा बाहर आया, कस्तूर को लगा जैसे पहाड़ की सीधी चढ़ाई, चढ़ते-चढ़ते, एकाएक खत्म हो गये। पसीना एकाएक ठंडा लगने लगा। मोहनदास ने नाल काटी। एक हाथ में बच्चा था, दूसरे हाथ से साफ किया। साफ कपड़े में लपेटकर मां के पास लिटा दिया। फिर माथे का पसीना पोंछा। मोहनदास ने मां-बेटे को धो-पोंचकर साफ-सुथरा बना दिया था। कस्तूरबा सब शिकवे-शिकायत भूलकर मुग्ध भाव से बच्चे को निहार रही थी। मोहनदास बुदबुदाए, 'महा वेदना और अवर्णननीय सुख!'

जब स्थिति सामान्य हुई तो मोहनदास ने हंसकर कहा, 'देखी मेरी दाईगिरी?' कस्तूरबा मुस्कुरा दी।

बच्चे के जन्म के बाद मां-बेटे दोनों को थकान लगने लगी थी। मोहनदास भी कुर्सी पर बैठकर सुस्ता रहे थे। कस्तूरबा की थकान तो स्वाभाविक थी। बच्चे की आंखें बंद थीं। लगता था, बच्चा बाहर की दुनिया में पदार्पण करने के बाद भी अंदर की दुनिया में है। बच्चे की खाल एकदम लाल थी। नरम रुई की तरह। लगता था छूत ही उतर जायेगी। मोहनदास ने सुस्ता लेने के बाद नजदीक से बच्चे को देखा। सबसे पहले उनकी नजर इस बात पर गयी कहीं उसके अनाड़ीपन के कारण बच्चे को चोट न लग गयी हो। बच्चा शांत और साफ-सुथरा था। मोहनदास

लौटकर फिर आराम कुर्सी पर बैठ गये। उनकी नजर मां और बच्चे पर थी, कब किस चीज की जरूरत पड़ जाये।

उन्हें लगा बच्चा कुलबुला रहा है। वे उठकर गये। कस्तूरबा गहरी नींद में थी। बच्चा सोता हुआ दूध पीने की तरह होंठो को मिचमिचा रहा था। मोहनदास उसे सुरक्षित संसार में लाने में हिस्सेदार थे। इस वासना और उस वासना में कितना अंतर है। कस्तूर उस वासना का आकर्षण तभी त्याग चुकी थी जब दोनों ने ब्रह्मचर्य का संकल्प लिया था। मोहनदास सोच रहे थे, मैं शायद ज्यादा कमजोर था। उसने कभी चाहा भी नहीं, कभी विरोध भी नहीं किया। कस्तूरबा ने बिना किसी आपत्ति के अपने लिए एक तटस्थ पत्नी की भूमिका स्वीकार कर ली थी, प्रेम के साथ गर्भ धारण करना और आशान्वित भाव से उसे वहन करना। वासना रचती भी है, जन्म भी देती है। क्या इन दोनों वत्सल बहनों का समन्वय किसी ऐसी सकारात्मक वासना को जन्म नहीं दे सकता...जहां न हत्या हो, न रक्तपात हो, न घृणा हो, न मृत्यु का नृशंस राज तथा सत्ता और शक्ति की सरोकारहीन भूख हो? कुछ किया जा सकता है? ये सब सवाल मोहनदास के मन में उथल-पुथल मचाए हुए थे।

कस्तूरबाई जग गयी थी। धीरे-धीरे पानी मांग रही थी। मोहनदास पानी गर्म करके लाए, सहारा देकर उठाया, दो घूंट पानी पीकर लेट गयी। मोहनदास कुर्सी पर लेटकर फिर सोचने लगे। कुछ देर पहले ही वे चौथे बच्चे के प्रसव के समय कस्तूरबा की भौतिक और मानसिक त्रासदी के प्रत्यक्ष दृष्टा रहे थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि पुरुष की प्रजनन में क्या सकारात्मक भूमिका होनी चाहिए, क्या काम वासना शांत करने तक ही उसका दायित्व है? यह सवाल उन्हें अंदर तक मथ रहा था। अंदर दुहरी लड़ाई चल रही थी। दूसरी लड़ाई का क्षेत्र अलग था। भारतीयों के शोषण के प्रति आक्रोश, न्याय के साथ सरोकार, मनुष्य मात्र की पीड़ा से मुक्ति और समाज में चली आ रही दकियानूसी परंपराओं को चुनौती देने के कारण दक्षिण अफ्रीका के प्रति विकसित हुई दृष्टि से उपजने वाली उलझनें थीं। वे पहली बार भारतीय संस्कृति में चली आ रही विषम स्थितियों की पड़ताल कर रहे थे। पुरुष-स्त्री के पारस्परिक रिश्तों में संभावित परिवर्तन की जरूरत भी महसूस कर रहे थे। स्त्री के पास नकार का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए? क्या यह प्रयोग का विषय नहीं हो सकता? पहली बार उनकी समझ में आ रहा था, कस्तूरबा को विश्वास है कि विवाह के प्रति मोहनदास की प्रतिबद्धता उतनी ही मजबूत है जितनी उसकी अपनी। प्रतिबद्धता क्या कर्तव्य-योजना की मांग नहीं करती?

... क्रमशः अगले अंक में

लोकनायक जयप्रकाश का अंतिम संदेश!

दर्शन तो एक बहुत भारी शब्द है। दर्शन जैसी चीज मेरे जीवन के साथ जुड़ी हो, यह तो दूसरे ही बता सकते हैं। मेरा जीवन तो जैसे बीज से अंकुर निकलता है, अंकुर से पौधा निकलता है, फिर वो वृक्ष बनता है, उस तरह से स्वाभाविक ढंग से वो आगे बढ़ता गया और यहां तक पहुंचा है। उसमें से कोई दर्शन हो तो दूसरे ही लोग, जो अध्ययन करना चाहें वो अध्ययन करके निकाल सकते हैं दर्शन को। मैं स्वयं तो कुछ नहीं करना चाहता। केवल एक बात जो शायद दर्शन के अंदर आवे कि नहीं वो यह कहना चाहता हूं कि किसी कारण से बहुत कम उम्र से ही बालपन से ही, कुछ मेरी हमदर्दी, संवेदना रही है, उन लोगों के साथ जो समाज में दुखी हैं, गरीब हैं, दलित हैं, पीड़ित हैं और उनका किस प्रकार उद्धार हो, कैसे वो स्वतंत्र हों, कैसे वो प्रबुद्ध हों, कैसे वो कम-से-कम खानेभर के लिए प्राप्त कर सकें, जिसमें जीवन उनका सुख से बीते। ये प्रश्न हमारे सामने बराबर रहे हैं और इनकी खोज में रहा, इसी खोज में मार्क्सवाद तक पहुंचा। फिर वहां भी जो कमियां मैंने देखीं, जहां-जहां मार्क्सवाद के विचार समाज में लागू किये गये हैं समाजवादी देशों में, वहां के जो दोष देखे मैंने, उन पर से यह निश्चय हुआ कि ये भी काफी नहीं हैं। इसके सिवा भी कुछ होना चाहिए। तो उसी खोज में आज भी लगा हूं। मैं समझता हूं कि अब तक दुनिया के जो विचारक रहे हैं जिन्होंने खासकर के अपने विचार को कोई आचार के रूप देने का प्रयास किया उनमें महात्मा गांधी ऐसे थे जो जीवन के आदर्शों को, मूल्यों को कायम रखते हुए एक नये समाज का निर्माण करना चाहते थे और किसी हद तक किया भी। उन्हीं के पथ पर बहुत नम्रतापूर्वक चलने का प्रयास मेरा है। बहुत कठिन यात्रा है, मैं जानता हूं और अब यात्रा का अंत होने वाला है। इसलिए मुझे कोई क्षोभ नहीं है इसका, दुख नहीं है इसका। लेकिन फिर भी ये जरूर अफसोस है कि और समय नहीं मिला है कि मैं इस दर्शन का कुछ स्थूल रूप अपने जीवन और अपने समाज के जीवन में देख सकूं वो बन सके। मेरे दर्शन में व्यक्ति और समावज में भिन्नता तो है, लेकिन परस्पर अवलंबन भी है। व्यक्ति स्वातंत्र्य समाज स्वातंत्र्य के बिना नहीं हो सकता। समाज स्वातंत्र्य तो व्यक्ति स्वातंत्र्य के बिना हो ही नहीं सकता है। व्यक्ति स्वातंत्र्य में बोलने का, स्वातंत्र्य लिखने का, विचार जो कुछ है वो विचार करने का, रखने का वो है और जो समाज का स्वातंत्र्य है, कुछ बीच की कड़ी शायद छूट गयी। वह स्वातंत्र्य व्यक्ति स्वातंत्र्य के बिना नहीं हो सकतां लेकिन यह भी ठीक है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य होते हुए भी समाज स्वातंत्र्य शायद नहीं हो। एक कारण तो यह है कि व्यक्ति सामान्य रूप से कार्यक्षेत्र उसका बहुत छोटा होता है। सोचने का करने का उतने दायरे में वह स्वातंत्र्य हो सकता है लेकिन उससे कुछ आगे बढ़ के करना चाहे तो उसके सामने वो बाधाएं उपस्थित हो सकती हैं जो पहले से दिखायी नहीं देतीं। वो समाज में पड़ी हुई हैं तो ये दूर की जो बाधाएं हैं समाज के विकास के रास्ते में, उनको भी दूर करना होगा। ये भी उन लोगों को सोचना होगा जो नया समाज बनाना चाहते हैं।

(20 सितंबर,'79 को कदमकुआं, पटना में दिया गया संदेश)

गतिविधियां एवं समाचार

सर्वोदय बाढ़-राहत अभियान

सर्व सेवा संघ (अ.भा. सर्वोदय मंडल) की पूर्वी चंपारण जिला सर्वोदय मंडल की इकाई एवं गांधी संग्रहालय, मोतीहारी के संयुक्त तत्त्वावधान में बिहार प्रांत के पूर्वी चंपारण जिले में आयी प्रलयकारी बाढ़ में राहत कार्य किया गया।

ज्ञातव्य है कि पूर्वी चंपारण में भीषण बाढ़ के कारण लाखों परिवार बेघर हो गये थे। बेघर हुए लोगों में भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। बाढ़ पीड़ितों को सहायता करने के लिए जिले के गांधी संग्रहालय में बाढ़ पीड़ित सहायता समिति बनाकर विभिन्न संगठनों के सहयोग से राहत कार्य शुरू किया गया। बाढ़ पीड़ित सहायता समिति ने एक पखवारे तक लगातार सर्वोदय बाढ़ पीड़ित सहायता अभियान चला कर राहत पहुंचायी गयी।

जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष एवं पूर्व मंत्री ब्रजकिशोर सिंह, लोकसमिति के अध्यक्ष राय सुंदरदेव शर्मा, शांति समिति के अध्यक्ष डॉ. परवेज, आईडिया के दिग्विजय कुमार, जिला सर्वोदय मंडल के सचिव विनय कुमार, मंगल दूध के निदेशक हिमांशु सिंह, डॉ. संतोष कुमार, आलोक कुमार, अमर, कुनाल झा, वार्ड पार्षद अमरेंन्द्र सिंह, शशि भूषण कुमार, कृष्णकांत राज के साथ लोकसेवक एवं सर्वोदय मित्रों ने राहत कार्य के लिए हर संभव मदद की। सर्वोदय बाढ़ पीड़ित सहायता अभियान पूर्वी चंपारण के बंजरिया, सुगौली, पकड़ीदयाल, चिरैया, बनकटवा आदि प्रखंडों के गांव में हजारों बाढ़ पीड़ितों के दुख-दर्द को दूर करने में यथासंभव सहयोग किया। बाढ़ पीड़ित अभियान को सफल बनाने में जिले के कई सामाजिक संस्थाओं का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। सहायता समिति द्वारा दो दिन भोजन के तैयार एक-एक हजार पैकेट, मोमबत्ती, माचिस, बिस्कुट आदि जिलाधिकारी

रमण कुमार को सौंपा जो पीड़ितों तक हेलीकॉप्टर के माध्यम से पहुंचाया गया। सर्वोदय बाढ़ पीड़ित अभियान स्थिति सामान्य होने तक सक्रिय रहा।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने पूर्वी चंपारण के सर्वोदय साथियों को इस राहत कार्य के लिए बधाई दी।

–विनय कुमार

कविता

डॉ. सबा यूनुस की तीन कविताएं

एक

ऐ खुदा, सुन जरा...
बन्दे तेरे, लेके नाम तेरा
कर रहे क्या क्या खता...

है रहीम तू
है करीम तू
दे इन्हें बता मकसद तेरा,
बांटना नहीं, तोड़ना नहीं...
अमन है तू, रंजिश नहीं...

हर जिस्म में है लहू तेरा
हर ज़र्रे में है नूर तेरा
तू ही राम है
तू ही है मसीह
तू वो रब है
जिसके नाम कई...

तो क्यूं जल रहा
तेरे नाम पे ये जहां
क्यों उबल रहा,
मजहब के नाम पे ज़हर यहां...

गर तू सुन रहा है मेरी सदा
तो देख आके ये माजरा
खत्म कर ये नफरतों का सिलसिला

दे सुकुन तू, आराम दे
जलते हुए इंसान को
तू थाम ले...
कर दे शाद ये एह-ले-जहां...

दो

मुमकिन है
मेरे कलम से निकली आग
मज़हब की कड़ी दीवारे
जला दे।

मुमकिन है
मेरे लफ्ज़ों के नश्तर
रिवाज़ों की बेड़ियां
हिला दे।

मुमकिन है
किसी रोज, मैं लिख दूं
कुछ ऐसा, जो
मौजूदा हालात का रंग उड़ा दे।

मुमकिन है
मेरी सोच, तेरी सोच से जुदा हो
कि, न इत्तेफाकी इस हद तक
बढ़े, कि तू मुझे रक़ीब बना ले।

पर,

मेरी सोच, मेरे लफ्ज़, मेरे कलम
और उसकी स्याही
तेरे दिल को झकझोर जरूर देगी

और मुमकिन है
तेरा गुरुर, तेरी अना
मेरे ख्यालात की तेज़ आंधी में
नेस्तो नाबूद हो जाए

और तू, तू न रहे
मै, मै न रहूं
और हम...
खुद से निकल कर
दास्तां हो जाएं।

तीन

हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी की,
हो रही दुर्दशा कैसी?

ये वो भाषा है जिसके समक्ष
नमन करे सभी जीवंत प्राणी,
ये वो भाषा है जिसका उच्चारण
करते ऋषि, मुनि, महंत और ज्ञानी,
इस भाषा का मोल न कोई,
इससे मधुर बोल न कोई...

हिन्दी है बेटी संस्कृत की,
हिन्दी है बोली अमृत की,
अंग्रेजी के आगमन से,
दब के रह गयी छवि इसकी...

हिन्दी को हमे उठाना है,
जन-जन की आवाज बनाना है,
हिन्दी से नाता जोड़ के ही,
पायेंगे परमात्मा की दृष्टि...

हिन्दी है पीड़ा मन की,
हिन्दी है तृप्ति मन की,
हिन्दी है हिन्द की पहचान,
हिन्दी है मूरत भाईचारे की...

नवयुग की आशा है हिन्दी,
भारत की भाषा है हिन्दी,
हिन्दी को अपनाओ बन्धु,
हिन्दी है साधना देवो की। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।